श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला-ग्रंथांक—१६

पूर्वधर श्री शय्यम्भवसूरि विरचितम्

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

(चूलिका सहितम्)

संशोधित मूल पाठ तथा अन्वय सहित हिन्दी शब्दार्थ

प्रकाशक

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

रांगडी मोहल्ला, बीकानेर

मूल्य—तीन रुपये

प्रकाशकीय

श्री दशवैकालिक सूत्र में साधु-आचार का वर्णन किया गया है। इसकी शैली, भाषा आदि इतनी सरल है कि साधारण पाठक भी साधु आचार के बारे में सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसीलिये श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर की परीक्षाओं में भी यह सूत्र निर्धारित किया गया है।

इस सूत्र के और भी कई प्रकार के संस्करण प्रकाशित हुए हैं। किन्तु उनमें सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ इस ढंग से नहीं लिखा गया है, जिससे भावार्थ प्रायः अलग से देने की आवश्यकता न रहे। इस संस्करण में उक्त दृष्टिकोण को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है।

यह सूत्र करीब २५ वर्ष पहले श्री सेठिया जैन ग्रन्थमाला बीकानेर द्वारा प्रकाशित हुआ था। किन्तु अप्राप्य होने से अब पुनः श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है।

यद्यपि प्रूफ संशोधन में काफी ध्यान रखा गया है, फिर भी कोई त्रुटि रही हो तो पाठकगण सुधार करके सूचित करावें, जिससे आगामी संस्करण में भूल सुधार करने में सुविधा रहे।

संघसेवक

जुगराज सेठिया, मन्त्री

सुन्दरलाल तातेड़, सहमन्त्री   उगमराज मूथा, सहमन्त्री

जसकरण बोथरा, ,,   पृथ्वीराज पारख, ,,

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

विषयानुक्रमणिका

मुद्रक —

जैन आर्ट प्रेस,

(श्री अ भा साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)

रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज)

॥ णमोत्थुण समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

श्री दशवैकालिक सूत्रम्

(मूल पाठ अन्वय सहित हिन्दी शब्दार्थ और सक्षिप्त भावार्थ)

दुमपुप्फिया नामक प्रथम अध्ययन

धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो ।
देवा वि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अन्वयार्थ — (अहिंसा) अहिंसा प्राणियो की हिंसा का त्याग करना तथा जीवो की रक्षा करना (सजमो) सयम और (तवो) तपरूप (धम्मो) श्रुतचारित्र रूप धर्म (मगल) मगल-कल्याणकारी, और (उक्किट्ठ) श्रेष्ठ है। (जस्स) जिस पुरुष का (मणो) मन (सया) सदा (धम्मे) धर्म मे लगा रहता है (त) उसको (देवा) देवता (वि) भी (नमसति) नमस्कार करते है ॥१॥

भावार्थ श्रुतचारित्र रूप धर्म मे लीन प्राणी देवो का भी पूज्य बन जाता है।

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रस ।
ण य पुप्फ किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पय ॥२॥

अन्वयार्थ – (जहा) जिस प्रकार (भमरो) भ्रमर

(दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फेसु) फूलों में से (रस) रस को (आवियइ) पीता है (य) और (पुप्फ) फूल को (ण किलामेइ) पीडित नहीं करता है (य) और (सो) वह भ्रमर (अप्पय) अपनी आत्मा को (पीणेइ) सन्तुष्ट कर लेता है ॥२॥

भावार्थ — जैसे भ्रमर अनेक वृक्षों के फूलों से थोड़ा थोड़ा रस चूसता है, इस प्रकार वह फूलों को कष्ट नहीं पहुंचाता हुआ अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर लेता है।

एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए सति साहुणो ।
विहगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

अन्वयार्थ — (एमे ए) इसी प्रकार ये (लोए) लोक में (जे) जो (मुत्ता) द्रव्य भाव परिग्रह से मुक्त (समणा) श्रमण तपस्वी (साहुणो) साधु (सति) हैं वे (पुप्फेसु) फूलों में (विहगमा) पक्षियों के (व) समान (दाणभत्तेसणे-णा) दाता द्वारा दिये हुए आहारादि की गवेषणा में (रया) रत रहते हैं ॥३॥

भावार्थ — साधु गृहस्थियों को असुविधा न पहुंचाते हुए अनेक घरों से थोड़ा थोड़ा प्रासुक आहारादि ग्रहण करने में ठीक उसी प्रकार रत रहते हैं जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों में रत रहते हैं।

उत्थानिका — गुरु महाराज के प्रति शिष्य प्रतिज्ञा करता है —

वय च वित्ति लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥४॥

अन्वयार्थ — (जहा) जिस प्रकार (पुप्फेसु) फूलों में (भमरा) भ्रमर (रीयते) अपना निर्वाह करते हैं। (य) उसी

प्रकार (वय) हम साधु (अहागडेसु) गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहारादि की (वित्ति) भिक्षा (लब्भामो) ग्रहण करेंगे (य) जिससे (कोइ) किसी जीव को (न उवहम्मइ) कष्ट न हो ॥४॥

भावार्थ — भ्रमर की भांति साधु लोग गृहस्थों द्वारा अपने लिए बनाये हुए आहार में से थोडा थोडा लेकर अपनी संयम-यात्रा का निर्वाह करते हैं।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (बुद्धा) तत्व के जानने वाले हैं और (महुगारसमा) भ्रमर के समान (अणिस्सिया) कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित (भवंति) हैं और (नाणापिंडरया) अनेक घरों से थोड़ा थोड़ा आहारादि लेने में संतुष्ट हैं तथा (दंता) इन्द्रियों के दमन करने वाले हैं। (तेण) इसी से वे (साहुणो) साधु (वुच्चंति) कहलाते हैं ॥५॥ (त्तिबेमि) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि— हे आयुष्मन् जम्बू ! मैंने जैसा भगवान् महावीर से सुना है, वैसा ही कहा है।

भावार्थ – जो तत्व को जानने वाले हैं, भ्रमर के समान कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित हैं, अनेक घरों से थोडा थोडा आहार लेकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं और जो इन्द्रियों का दमन करते हैं, वे साधु कहलाते हैं।

सामण्णपुव्वय नामक दूसरा अध्ययन

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीअंतो, संकप्पस्स वसं गओ ॥१॥

अन्वयार्थ — (जो) जो (कामे) काम भोगों का (न) नहीं (निवारए) त्यागता है वह (संकप्पस्स) इच्छाओं के (वसं गओ) वश में होकर (पए पए) पद पद पर (विसीअंतो विसीदंतो) खेदित होकर (सामण्णं) श्रमणधर्म का (कहं नु) किस प्रकार (कुज्जा) पालन कर सकता है ॥१॥

भावार्थ — जो इन्द्रियों के विषयों का त्याग नहीं करता, उसकी इच्छाएं हमेशा बढ़ती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता। सन्तोष न होने से मानसिक कष्ट होता है, जिससे चारित्र-धर्म की आराधना नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करना चाहिए।

वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥२॥

अन्वयार्थ — (जे) जो पुरुष (अच्छंदा) पराधीन होने के कारण (वत्थ) वस्त्र (गंध) गंध (अलंकारं) आभूषण (इत्थीओ) स्त्रियों का और (सयणाणि) शय्या को (न) नहीं (भुंजंति) भोगता है। (से) वह (चाइत्ति) त्यागी (न) नहीं (वुच्चइ) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थ — जो पुरुष रोग आदि किसी कारण से पराधीन होकर विषयो का सेवन नही कर सकता, वह त्यागी नही कहलाता। किन्तु अपनी इच्छा से विषयो का त्याग करने वाला ही वास्तव मे सच्चा त्यागी कहलाता है ।

जे य कते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठीकुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थ — (जे) जो पुरुष (लद्धे) प्राप्त हुए (वि) भी (कते) मनोहर (पिए) प्रिय (भोए) भोगने योग्य (य) और (साहीणे) स्वाधीन (भोए) भोगो का (पिट्ठीकुव्वइ) उदासीनता पूर्वक (चयई) त्याग देता है (से) वह (हु) निश्चय से (चाइत्ति) त्यागी (वुच्चइ) कहलाता है ॥३॥

भावार्थ — भोगो की प्राप्ति होने पर भी और भोगने की स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगो को नही भोगता, वही आदर्श त्यागी कहलाता है ।

समाइपेहाइ परिव्वयतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नो वि अहं वि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज राग ॥४॥

अन्वयार्थ — (समाइपेहाइ) समभाव पूर्वक (परिव्वयतो) सयम मार्ग मे विचरण करते हुए साधु का (मणो) मन (सिया) कभी (बहिद्धा) सयम से बाहर (निस्सरई) निकल जाय तो (सा) वह स्त्री (महं) मेरी (न) नही है और (अहं) मैं (वि) भी (तीसे) उसका (नो वि) नही हू । (इच्चेव) इस प्रकार विचार कर (ताओ) उस स्त्री पर से (राग) राग भाव को (विणइज्ज) दूर करे ॥४॥

आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ॥५॥

अन्वयार्थ — (आयावयाही) आतापना लो और शरीर को तपस्या से सुखा डालो (सोगमल्लं) सुकुमारता का (चय) त्याग दो (कामे) काम भोगों को (कमाही) दूर करो (खु) निश्चय ही (दुक्खं) दुःख (कमियं) दूर होगा (दोसं) द्वेष को (छिंदाहि) नष्ट करो (रागं) राग को (विणएज्ज) दूर करो (एवं) ऐसा करने से (संपराए) संसार में (सुही) सुखी (होहिसि) होओगे ॥५॥

भावार्थ — पूर्वोक्त गाथा में सूत्रकर्त्ता ने मनोनिग्रह का अन्तरंग उपाय बतलाया है । अब मनोनिग्रह का बाह्य उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि संयम से बाहर जाते हुए मन को वश में करने के लिए शरीर की सुकोमलता का त्याग करके ऋतु अनुसार आतापना लेनी चाहिए, तपस्या करनी चाहिए और राग द्वेष को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा करने से प्राणी सुखी होता है ।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

अन्वयार्थ — (अगंधणे) अगन्धन नामक (कुले) कुल में (जाया) उत्पन्न हुए सर्प (जलियं) जलती हुई (धूमकेउं) धुआं निकलती हुई (दुरासयं) कठिनाई से सहन योग्य (जोइं) अग्नि में (पक्खंदे) गिर जाते हैं किन्तु (वंतयं) वमन किये हुए विष को (भोत्तुं) भोगने की (न इच्छंति) इच्छा नहीं करते ॥६॥

भावार्थ — सती राजमती रथनेमि को कहती है कि अग-

धन कुल मे उत्पन्न हुए सर्प अग्नि मे जलकर मर जाना तो पसद करते हैं किन्तु उगले हुए विष को पुन पीना नहीं चाहते ।

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीवियकारणा ।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ॥७॥

अन्वयार्थ — (अजसोकामी) हे अपयश के इच्छुक ! (ते) तुझे (धिरत्थु) धिक्कार हो (जो) जो (त) तू (जीवियकारणा) असयम रूप जीवन के लिए (वत) वमन किये हुए को (आवेउ) पीना (इच्छसि) चाहता है इसकी अपेक्षा तो (ते) तेरे लिए (मरण) मर जाना (सेय) श्रेष्ठ (भवे) है ॥७॥

भावार्थ — सती राजमती चचलचित्त बने हुए रथनेमि को सयम मे स्थिर करने के लिए उपदेश देती है कि सयम धारण करके असयम म आना निन्दनीय है। ऐसे असयम पूर्ण और पतित जीवन की अपक्षा तो सयमावस्था म मृत्यु हो जाना अच्छा है।

अह च भोगरायस्स, त चऽसि अधगवण्हिणो ।
मा कुले गधणा होमो, सजम निहुओ चर ॥८॥

अन्वयार्थ — (अहच) मैं राजमती (भोगरायस्स) भोजराज–उग्रसेन की पुत्री हू (च) और (त) तू (अधगवण्हिणो) अधकवृष्णि–समुद्रविजय का पुत्र (असि) है (गधणाकुले) गन्धन कुल मे उत्पन्न हुए सप के समान (मा होमो) मत हो किन्तु (निहुओ) मन को स्थिर रखकर (सजम) सयम का (चर) पालन कर ॥८॥

भावार्थ — *राजमती रथनेमि से कहती है कि अपन दोनो उच्चकुल मे उत्पन्न हुए हैं। अत उगले हुए विष को वापस पी जाने वाले गन्धन कुल के साप के समान न होना चाहिए।*

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारीओ ।
वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥९॥

अन्वयार्थ — (तं) हे मुनि ! तुम (जा जा) जिन जिन (नारीओ) स्त्रियों को (दिच्छसि) देखोगे (जइ) यदि उन-उन पर (भावं) बुरे भाव (काहिसि) करोगे तो (वायाविद्ध-विद्धो) वायु से प्रेरित (हडो व्व) हड नामक वनस्पति की भांति (अट्ठिअप्पा) अस्थिर आत्मा वाले (भविस्ससि) हो जाओगे ॥९॥

भावार्थ — राजमती रथनेमि से कहती है कि हे मुनि ! जिस किसी भी स्त्री को देखकर यदि तुम इस प्रकार काम मोहित हो जाओगे तो जैसे समुद्र के किनारे खड़ा हुआ हड नाम का वृक्ष हवा के एक ही झोंके से समुद्र में गिर पड़ता है वैसे ही तुम्हारी आत्मा भी उच्च पद से नीचे गिर जायेगी ।

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥१०॥

अन्वयार्थ —(सो) वह रथनेमि (तीसे) उस (संजयाइ) संयमवती साध्वी के (सुभासियं) सुभाषित (वयणं) वचन को (सोच्चा) सुनकर (धम्मे) धर्म में (संपडिवाइओ) स्थिर हो गया (जहा) जैसे (अंकुसेण) अंकुश से (नागो) हाथी वश में हो जाता है ॥१०॥

भावार्थ - ब्रह्मचारिणी राजमती के सुन्दर वचनों को सुनकर रथनेमि संयमधर्म में स्थिर हो गये, जिस प्रकार अंकुश से हाथी वश में आ जाता है ।

एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ — (सबुद्धा) तत्वज्ञ (पडिया) पाप से डरने वाले पण्डित (पवियक्खणा) विचक्षण पुरुष (एव) ऐसा ही (करंति) करते हैं अर्थात् (भोगेसु) भोगों से (विणियट्टंति) निवृत्त हो जाते हैं (जहा) जैस (से) वह (पुरिसुत्तमो) पुरुषों में उत्तम रथनेमि भोगों से निवृत्त हो गया ॥११॥ (त्तिबेमि) हे जम्बू ! जैसा मैंने भगवान् से सुना है, वैसा ही कहता हूं ।

भावार्थ — जो विवेकी होते हैं वे विषयभोगों के दोषों का जानकर उनका परित्याग कर देते हैं जैसे रथनेमि ने परित्याग कर दिया ।

खुड्डियायारकहा नामक तृतीय अध्ययन

(साधु के ५२ अनाचार)

जो निर्ग्रन्थ महर्षियों को आचरण करने योग्य नहीं है ऐसे ५२ अनाचारों का वर्णन इस अध्ययन में किया गया है ।

संजमे सुट्ठिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं ।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं ॥१॥

अन्वयार्थ — (संजमे) संयम में (सुट्ठिअप्पाण) भली भांति स्थिर आत्मा वाले (विप्पमुक्काण) सांसारिक बन्धनों से रहित (ताइण) छः काय जीवों के रक्षक (तेसिं) उन (निग्गंथाण) परिग्रह रहित (महेसिण) महर्षियों के (एय) ये आगे कहे जाने वाले (अणाइण्ण) अनाचीर्ण-अनाचार हैं ॥१॥

उद्देसियं कीयगडं, नियागमभिहडाणि य ।
राइभत्ते सिणाणे य, गंधमल्ले य वीयणे ॥२॥

अन्वयार्थ —१ (उद्देसियं) [1] औद्देशिक, २ (कीयगडं) साधु के लिए खरीदा हुआ, ३ (नियाग) किसी का आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर से लिया हुआ आहार ४ (अभिहडाणि)

---

१ किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधाकर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक कहलाता है ।

साधु के लिये सामने लाया हुआ, (य) और ५ (राइभत्ते) रात्रि-भोजन, (य) और ६ (सिणाणे) स्नान, ७ (गध) सुगंधित पदार्थों का सेवन, ८ (मल्ले) फूलादि की माला, (य) और ९ (वीयणे) पखादि से हवा लेना ॥२॥

सनिही गिहिमत्ते य, रायपिडे किमिच्छए ।
सवाहणा दतपहोयणा य, सपुच्छणा देहपलोयणा य ॥३॥

अन्वयार्थ — १० (सनिही) घी गुड आदि वस्तुओं का सचय करना, ११ (गिहिमत्ते) गृहस्थ के पात्र मे भोजन करना, (य) और १२ (रायपिडे) राजपिंड का ग्रहण करना, १३ (किमिच्छए) 'तुमको क्या चाहिए' इस प्रकार याचक से पूछ कर जहाँ उसकी इच्छानुसार दान दिया जाता हो ऐसी दानशाला आदि मे आहारादि लेना, १४ (सवाहणा) मर्दन करना, (य) और १५ (दतपहोयणा) अगुली आदि से दात धोना १६ (सपुच्छणा) गृहस्थो से सावद्य कुशल प्रश्न आदि पूछना, (य) और १७ (देह-पलोयणा) दर्पण आदि मे मुख देखना ॥३॥

अट्ठावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्ठाए ।
तेगिच्छ पाहणा पाए, समारभ च जोइणो ॥४॥

अन्वयार्थ — १८ (अट्ठावए) जूआ खेलना (य) और (नालीए) नालिका चौपडपासा शतरंज आदि खेलना, (य) और १९ (छत्तस्सधारणट्ठाए) छत्र धारण करना, २० (तेगिच्छ) रोग का इलाज करना, २१ (पाए पाहणा) पैरो में जूते आदि पहनना, (च) और २२ (जोइणो) अग्नि का (समारभ) आरभ करना ॥४॥

सिज्जायरपिंड च, आसदी पलियकए ।
गिहतर निसिज्जा य, गायस्सुव्वट्टणाणि य ॥५॥

अन्वयार्थ — २३ (सिज्जायरपिंड) शय्यातर का आहार लेना, (च) और २४ (आसंदी) बेंत आदि के बने हुए आसन पर बैठना, २५ (पलियंकए) पलंग पर बैठना, २६ (गिहंतर निसिज्जा) गृहस्थ के घर बैठना या दो घरों के बीच बैठना, (य) और २७ (गायस्सुव्वट्टणाणि) मैल उतारने के लिए शरीर पर उबटन करना।

गिहिणो वेयावडियं, जा य आजीववत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं आउरस्सरणाणि य ॥६॥

अन्वयार्थ — २८ (गिहिणो) गृहस्थ की (वेयावडियं) वैयावृत्य करना अर्थात् उसे आहारादि देना, (य) और (जा) जो २९ (आजीववत्तिया) जाति कुल आदि बताकर आजीविका करना, ३० (तत्तानिव्वुडभोइत्तं) जो अच्छी तरह से प्रासुक नहीं हुआ है ऐसे मिश्र पानी का सेवन करना (य) और ३१ (आउरस्सरणाणि) रोग अथवा भूख से पीड़ित होने पर पहले भोगे हुए पदार्थों को याद करना या शरण चाहना ॥६॥

मूलए सिंगबेरे य, उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंदे मूले य सच्चित्ते, फले बीए य आमए ॥७॥

अन्वयार्थ — ३२ (अनिव्वुडे) सचित्त (मूलए) मूला (य) और ३३ (सिंगबेरे) अदरख आदा, ३४ (उच्छुखंडे) इक्षुखण्ड-गन्डेरी, (य) और ३५ (कंदे) कन्द वज्रकन्द आदि, ३६ (सच्चित्ते) सचित्त (मूले) मूल जड़, ३७ (फले) फल, आम, नींबू आदि (य) और ३८ (आमएबीए) तिलादि अपक्व बीजों का सेवन करना ॥७॥

सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए ॥८॥

अन्वयार्थ— ३९ (आमए) सचित्त (सोवच्चले) सोवचल-सचल नमक, ४० (सिंधवे लोणे) सैंधव-सींधा नमक, ४१ (रोमालोणे) रोमा नमक रोमकक्षार, ४२ (सामुद्दे) समुद्र का नमक, (य) और ४३ (पसुखारे) ऊसर नमक, (य) और ४४ (आमए) सचित्त (कालालोणे) काला नमक का सेवन करना ॥८॥

धुवणे त्ति वमणे य, वत्थी कम्म विरेयणे ।
अजणे दतवणे य, गायाब्भग विभूसणे ॥९॥

अन्वयार्थ— ४५ (धुवणे त्ति) अपने वस्त्र आदि का धूप देकर सुगन्धित करना, (य) और ४६ (वमणे) औषधि आदि से वमन करना, ४७ (वत्थीकम्म) मलादि की शुद्धि के लिए वस्ती कर्म करना, ४८ (विरेयणे) जुलाब लेना, ४९ (अजणे) आँखों में अजन लगाना, (य) और ५० (दतवणे) दतौन से दांत साफ करना, मस्सी आदि लगाना, ५१ (गायाब्भग) सहस्रपाक आदि तैलों से शरीर की मालिश करना, (य) और ५२ (विभूसणे) शरीर को विभूषित करना ॥९॥

सव्वमेयमणाइन्न, निग्गथाण महेसिण ।
सजमम्मि य जुत्ताण, लहुभूय विहारिण ॥१०॥

अन्वयार्थ— (सजमम्मि) सजम में (य) और तप में (जुत्ताण) लगे हुए, (लहुभूयविहारिण) वायु के समान अप्रतिबन्ध विहार करने वाले (निग्गथाण) निर्ग्रन्थ (महेसिण) महर्षियों के (एय) ये (सव्व) सब (अणाइन्न) अनाचीर्ण-अनाचार हैं ॥१०॥

पचासव परिण्णाया, तिगुत्ता छसु सजया ।
पचनिग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदसिणो ॥११॥

अन्वयार्थ — (पंचासव परिण्णाया) पांच आस्रवों के त्यागी (तिगुत्ता) मन, वचन और काया गुप्ति से युक्त (छसु संजया) छः काय जीवों के रक्षा करने वाले (पंचनिग्गहणा) पांच इन्द्रियों के निग्रह करने वाले (धीरा) परीषह उपसर्ग सहन करने में धीर (उज्जुदंसिणो) सरल स्वभावी (निग्गंथा) निर्ग्रन्थ होते हैं ॥११॥

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥१२॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) प्रशस्त समाधिवंत (संजया) संयमी मुनि (गिम्हेसु) ग्रीष्म ऋतु में (आयावयंति) धूप की आतापना लेते हैं (हेमंतेसु) हेमन्त ऋतु में—शीतकाल में (अवाउडा) अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते हैं (वासासु) वर्षा ऋतु में (पडिसंलीणा) कछुए की तरह इन्द्रियों को वश करके रहते हैं ॥१२॥

भावार्थ — जिस ऋतु में जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है उस ऋतु में मुनि वही तपस्या करते हैं।

परीसहरिऊदंता, धुयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥१३॥

अन्वयार्थ — (परीसहरिउदंता) परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले (धुयमोहा) मोह ममता के त्यागी (जिइंदिया) इन्द्रियों को जीतने वाले (महेसिणो) महर्षि (सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा) सब दुःखों का नाश करने के लिए मोक्ष प्राप्ति के लिए (पक्कमंति) पराक्रम करते हैं संयम और तप में प्रवृत्त होते हैं ॥१३॥

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य ।
केइत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया ॥१४॥

अन्वयार्थ — (दुक्कराइ) दुष्कर क्रियाओं को (करित्ताण) करके (य) और (दुस्सहाइ) दुःसह कष्टों को (सहित्तु) सहन करके (केइ) कितनेक (देवलोएसु) देवलोक में उत्पन्न होते हैं और (केइत्थ) कितनेक इसी भव में (नीरया) कर्मरज से रहित होकर (सिज्झन्ति) सिद्ध हो जाते हैं, मोक्ष चले जाते हैं ॥१४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइ, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ — (सिद्धिमग्ग) मोक्ष मार्ग के (अणुप्पत्ता) साधक, (ताइणो) छः काय जीवों के रक्षक मुनि (संजमेण) संयम से (य) और (तवेण) तप से (पुव्वकम्माइ) पहले बंधे हुए कर्मों को (खवित्ता) क्षय करके (परिनिव्वुडे) निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥१५॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

अन्वयार्थ — (पचासव परिण्णाया) पाच आश्रवों के त्यागी (तिगुत्ता) मन, वचन और काया गुप्ति से युक्त (छसु सजया) छ काय जीवा के रक्षा करने वाले (पत्रनिग्गहणा) पाच इन्द्रियो के निग्रह करने वाले (धीरा) परीषह उपसग सहन करने मे धीर (उज्जुदसिणो) सरल स्वभावी (निग्गथा) निग्रन्थ होते हैं ॥११॥

आयावयति गिम्हेसु, हेमतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसलीणा, सजया सुसमाहिया ॥१२॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) प्रशस्त समाधिवंत (सजया) सयमी मुनि (गिम्हेसु) ग्रीष्म ऋतु में (आयावयति) सूय की आतापना लेते हैं (हेमतेसु) हेमन्त ऋतु मे-शीत काल मे (अवाउडा) अल्प वस्त्र या वस्त्र रहित रहते हैं (वासासु) वर्षा ऋतु मे (पडिसलीणा) कछुए की तरह इन्द्रियो को वश करके रहते हैं ॥१२॥

भावार्थ — जिस ऋतु में जिस प्रकार की तपस्या से अधिक कायक्लेश होता है उस ऋतु म मुनि वही तपस्या करते हैं।

परीसहरिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमति महेसिणो ॥१३॥

अन्वयार्थ — (परीसहरिउदता) परीषह रूपी शत्रुओं को जीतने वाले (धूअमोहा) मोह ममता के त्यागी (जिइंदिया) इन्द्रियों को जीतने वाले (महेसिणो) महर्षि (सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा) सब दु खो का नाश करने के लिए मोक्ष प्राप्ति के लिये (पक्कमति) पराक्रम करते हैं सयम और तप मे प्रवृत्त होते हैं ॥१३॥

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य।
केइत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झन्ति नीरया ॥१४॥

अन्वयार्थ — (दुक्कराइ) दुष्कर क्रियाओ को (करित्ताण) करके (य) और (दुस्सहाइ) दुःसह कष्टो को (सहित्तु) सहन करके (केइ) कितनेक (देवलोएसु) देवलोक मे उत्पन्न होते है और (केइत्थ) कितनेक इसी भव मे (नीरया) कर्मरज से रहित होकर (सिज्झन्ति) सिद्ध हो जाते हैं, मोक्ष चले जाते है ॥१४॥

खवित्ता पुव्वकम्माइ, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ — (सिद्धिमग्ग) मोक्ष मार्ग के (अणुप्पत्ता) साधक (ताइणो) छः काय जीवो के रक्षक मुनि (संजमेण) संयम से (य) और (तवेण) तप से (पुव्वकम्माइ) पहले बंधे हुए कर्मों को (खवित्ता) क्षय करके (परिनिव्वुडे) निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥१५॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

छज्जीवणिया नामक चतुर्थ अध्ययन

इस अध्ययन में छ काय जीवों का स्वरूप तथा उनकी रक्षा का उपाय बतलाया गया है—

सुयं मे आउस ! तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु छज्जीवणीया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया, सुपण्णत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती ॥

अन्वयार्थ — (आउस) हे आयुष्मन् शिष्य ! (मे) मैंने (सुयं) सुना है कि (तेणं) उन (भगवया) भगवान् ने (एवं) इस प्रकार (अक्खायं) कहा है कि (इह) इस जिनशासन में (खलु) निश्चय से (छज्जीवणिया) छज्जीवणिया-छ काय के जीवों का कथन करने वाला (नाम) नामक (अज्झयणं) अध्ययन है (समणेणं) श्रमण तपस्वी (कासवेणं) काश्यपगोत्रीय (भगवया) भगवान् (महावीरेणं) महावीर ने (पवेइया) सम्यक् प्रकार से उसकी प्ररुपणा की है (सुअक्खाया) सम्यक् प्रकार से कथन किया है (सुपण्णत्ता) भली प्रकार से बतलाया है । शिष्य ने पूछा— भगवन् ! क्या (अज्झयणं) उस अध्ययन का (अहिज्जिउं) अध्ययन करना-सीखना (मे) मेरे लिए (सेयं) कल्याणकारी है । गुरु ने कहा-हाँ ! (धम्मपण्णत्ती) उस अध्ययन को सीखने से धर्म का बोध होता है ।

कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण,
समणेण भगवया महावीरेण कासवेण
पवेइया सुग्रक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे,
ग्रहिज्जिउ ग्रज्झयण धम्मपण्णत्ती ॥

ग्रन्वयार्थ —(कयरा) वह छज्जीवणिया अध्ययन कौनसा है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिये कल्याणकारी है । शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ।

इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण
समणेण भगवया महावीरेण कासवेण
पवेइया सुग्रक्खाया सुपण्णत्ता सेय मे,
ग्रहिज्जिउ ग्रज्झयण धम्मपण्णत्ती ॥

ग्रन्वयार्थ —अब गुरु शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हैं कि (इमा) वह छज्जीवणिया अध्ययन इस प्रकार है । शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है ।

तजहा–पुढविकाइया ग्राउकाइया तेउकाइया,
वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया ॥

ग्रन्वयार्थ —(तजहा) जैसे कि (पुढविकाइया) पृथ्वी-कायिक पृथ्वीकाय के जीव (ग्राउकाइया) अप्कायिक-जल के जीव (तेउकाइया) तउकायिक-अग्निकाय सम्बन्धी जीव (वाउकाइया) वायु के जीव (वणस्सइकाइया) वनस्पति काय के जीव (तसकाइया) त्रस काय के जीव ।

पुढवीचित्तमतमक्खाया ग्रणेग जीवा पुढोसत्ता ग्रन्नत्थ सत्थ परिणएण । ग्राउ चित्तमत मक्खाया ग्रणेग जीवा पुढोसत्ता ग्रन्नत्थ सत्थपरिणएण । तेऊ चित्तमत मक्खाया ग्रणेग जीवा पुढोसत्ता ग्रन्नत्थ सत्थ परिणएण । वाऊ

चित्तामत मक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं । वणस्सई चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण ।

अन्वयार्थ —(सत्थपरिणएण) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (पुढवी) पृथ्वीकाय (आऊ) अप्काय (तेऊ) अग्निकाय (वायु) वायुकाय और (वणस्सई) वनस्पतिकाय (चित्तमत मक्खाया) सचित्त कही गई है (अणेग जीवा) वह अनेक जीवों वाली है (पुढोसत्ता) उसमें अनेक जीव पृथक् पृथक रहे हुए हैं।

भावार्थ —पांचों स्थावरकाय सचित्त हैं। वे अनेक जीव रूप हैं। उन जीवों का अस्तित्व पृथक् पृथक् है। इन कायों के जो शस्त्र हैं उनसे जब तक परिणत न हो जाय अर्थात् दूसरा शस्त्र न लग जाय तब तक ये सचित्त रहते हैं। शस्त्र परिणत होने पर अचित्त हो जाते हैं। आगे वनस्पतिकाय का विशेष वर्णन करते हैं —

तजहा–अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया,
बीयरुहा समुच्छिमा तणलया वणस्सइ
काइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेग
जीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥

अन्वयार्थ —(तजहा) वह इस प्रकार है (अग्गबीया) ऐसी वनस्पति जिसका बीज अग्रभाग पर होता है जैसे कोरट का वृक्ष (मूलबीया) जिसका बीज मूल भाग में होता है जैसे कंद आदि (पोरबीया) जिसका बीज पर्व-गांठ में होता है जैसे गन्ना ईख आदि (खंधबीया) जिसका बीज स्कन्ध में होता है जैसे वड पीपल आदि (बीयरुहा) बीज से उगने वाली वनस्पति जैसे चौबीस प्रकार के धान्य (समुच्छिमा) बिना बीज के अपने आप

उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे अकुर आदि (तणलया) तृणलता आदि ये सब (वणस्सइकाइया) वनस्पतिकायिक हैं (अणेगजीवा) उसमें अनेक जीव हैं (पुढोसत्ता) वे भिन्न भिन्न सत्ता वाले हैं। (सत्थपरिणएण) शस्त्र परिणत के (अन्नत्थ) सिवाय (सबीया) बीज सहित वनस्पति (चित्तमतमक्खाया) सचित्त कही गई हैं। अब त्रस काय का वर्णन किया जाता है —

से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तजहा—अडया पोयया जराउया रसया ससेइमा समुच्छिमा उब्भिया उववाइया। जेसि केसि च पाणाण अभिक्कत पडिक्कत सकुचिय पसारिय रुय भत तसिय पलाइय आगइ गइविन्नाया जेय कीडपयगा, जा य कुथु पिपीलिया सव्वे बेइन्दिया सव्वे तेइन्दिया सव्वे, चउरिदिया सव्वे पचिदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुआ, सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चइ।

अन्वयार्थ—(से) अब (जे) जो (इमे) ये आगे कहे जाने वाले (तसापाणा) त्रस प्राणी हैं वे (पुण) फिर (अणेगे) अनेक तथा (बहवे) बहुत प्रकार के हैं। (तजहा) जैसे कि (अडया) अडे से उत्पन्न होने वाले (पोयया) पोतज जन्म के समय चर्म से आवृत्त होकर कोथली सहित उत्पन्न होने वाले (जराउया) जरायुसहित पैदा होने वाले (रसया) रस में उत्पन्न होने वाले-द्वीन्द्रियादिक (ससेइमा) पसीने से उत्पन्न होने वाले (समुच्छिमा) सम्मूर्च्छिम देव नारकी सिवाय बिना माता पिता के सयोग से होने वाली जीवों की उत्पत्ति (उब्भिया) उद्भिज को फोडकर उत्पन्न होने वाले (उववाइया) उपपात जन्म

वाले देव नारकी आदि (जेसिंकेमिंच) इनमे से कोई २ (पाणाण) प्राणी (अभिक्कत) सामने आना (पडिक्कत) पीछे सरकना (सकुचिय) शरीर को सकुचित कर लेना (पसारिय) शरीर को फैलाना (रुय) शब्द का उच्चारण करना (भत) इधर उधर भ्रमण करना (तसिय) भयभीत होना (पलाइय) डर से भागना (आगइगड) आगति और गति (विन्नाया) आदि क्रियाओ का जानने वाले हैं (य) और (जे) जो (कीडपयगा) कीडे और पतगिये (य) और (जा) जो (कुंथुपिपीलिया) कुथवा और चींटियाँ हैं वे (सव्वे) सब (बेइदिया) द्वीन्द्रिय (सव्वे) सब (तेइदिया) त्रीन्द्रिय (सव्वे) सब (चउरिंदिया) चतुरिन्द्रिय (सव्वे) सब (पचिंदिया) पचेन्द्रिय (सव्वे) सब (तिरिक्ख जोणिया) तिर्यंच (सव्वे) सब (नेरइया) नारकी के जोव (सव्वे) सब (मणुआ) मनुष्य (सव्वे) सब (देवा) देव (सव्वे) सब (पाणा) प्राणी (परमाहम्मिया) परमसुख के अभिलाषी है। (एसो) यह (खलु) निश्चय करके (छट्ठो) छठा (जीव निकाओ) जीव निकाय (तसकाओत्ति) त्रसकाय (पवुच्चइ) कहा जाता है।

भावार्थ—सभी प्राणी सुख को चाहते हैं। अत किसी की हिंसा न करनी चाहिए।

१ चेसि छण्हं जीवनिकायाण नेव सय दड समारभिज्जा, नेवन्नेहि दड समारभाविज्जा दड समारभतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भत पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि।

अन्वयार्थ —मुनि (इच्चेसिं) इन (छण्हं) छः (जीवनिकायाण) जीवनिकायों के (दंड) हिंसा रूप दंड का (सयं) स्वयं (नेव समारंभिज्जा) आरम्भ न करे (अन्नेहिं) दूसरों से (दंडं) हिंसा रूप दंड का (नेव समारंभाविज्जा) आरम्भ न करावे और (दंड) हिंसा रूप दंड का (समारंभंते) आरम्भ करते हुए (अन्नेऽवि) अन्य जीवों को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझे। अब शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं (जावज्जीवाए) यावज्जीवन-जीवन पर्यन्त (तिविहं) तीन करण से–करना कराना और अनुमोदना से और (तिविहेण) तीन योग से अर्थात् (मणेणं) मन से (वायाए) वचन से और (काएण) काया से (न करेमि) न करूंगा (न कारवेमि) न कराऊंगा और (करतंपि) करते हुए (अन्नं) दूसरे को (न समणुजाणामि) भला भी नहीं समझूंगा। (भंते) हे भगवन्! (तस्स) उस दंड का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूं (निंदामि) आत्मसाक्षी से निंदा करता हूं (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं। (अप्पाणं) हिंसा दंड सेवन करने वाले पापात्मा को (वोसिरामि) त्यागता हूं॥

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा नेव अन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं॥१॥

अन्वयार्थ —(भंते) हे पूज्य-हे भगवन् ! (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत में (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमण) विरमण निवर्तन होता है-अत (भंते) हे भगवन् मैं (सव्व) सब प्रकार की (पाणाइवाय) प्राणातिपात रूप हिंसा का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू (से) अब से लेकर (सुहुम) सूक्ष्म (वा) अथवा (बायर) बादर (तस) त्रस (वा) अथवा (थावर) स्थावर प्राणियो के (पाणे) प्राणो को (सय) स्वयं (न अइवाइज्जा) हनन नहीं करूगा और (नेव) न (अन्नेहिं) दूसरों से (पाणे) प्राणियों के प्राणा का (अइवायाविज्जा) हनन कराऊगा (पाणे) प्राणियो के प्राणा का (अइवायंते) हनन करने वाले (अन्नेऽवि) दूसरा को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी नही जानू गा (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविह) तीन करण से करना, कराना, अनुमोदना से (तिविहेण) तीन योग से अर्थात् (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करू गा (न कारवेमि) न कराऊगा (करतंपि) करते हुए (अन्ने) दूसरो को (न (समणुजाणामि) भला भी नहीं समझू गा। (भंते) हे भगवन् ! मैं (तस्स) उस हिंसा रूपी पाप से (पडिक्कमामि) निवृत्त होता हू (निंदामि) उस पाप की निन्दा करता हू (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हू (अप्पाण) हिंसा रूप दड सेवन करने वाले आत्मा का (वोसिरामि) त्यागता हू। (भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ) सब (पाणाइवायाओ) प्राणातिपात से (वेरमणं) निवृत्ति रूप (पढमे) प्रथम (महव्वए) महाव्रत में (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू।

भावार्थ —शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन् ! मैं प्रथम महाव्रत के विषय में सावधान होता हू और पूर्वकाल में

किए हुए हिंसा सम्बन्धी पाप से निवृत्त होता हू ।

अहावरे दुच्चे भंते !, महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्व भंते ! मुसावाय पच्चक्खामि से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सय मुस वइज्जा नेवऽन्नेहिं मुस वाया-विज्जा मुस वयतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जी-वाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (मुसावायाओ) मृषावाद असत्य से (वेरमण) निवर्तन होता है । अत (भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्व) सब प्रकार से (मुसावाय) मृषावाद का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू । (से) वह इस प्रकार (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा (लोहा वा) लोभ से (भया वा) भय से अथवा (हासा वा) हसी से (सय) मैं स्वय (मुसावाय) असत्य (नेव वइज्जा) नही बोलूगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरों से (मुस) असत्य (वायाविज्जा) बोलाऊगा (मुस) असत्य (वय-तेऽवि) बोलते हुए (अन्ने) दूसरो को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूगा (जावज्जीवाए से वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है । (भंते) हे भगवन् ! मैं (सव्वाओ) सब (मुसावायाओ) मृषावाद को (वेरमण) त्याग रूप (दुच्चे) दूसरे (महव्वए) महाव्रत में (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू ।

भावार्थ—शिष्य दूसरे महाव्रत को स्वीकार करने की

प्रतिज्ञा करता है ।

अहावरे तच्चे भते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमण, सव्व भते ! अदिन्नादाण पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा रण्णे वा अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमन्त वा नेव सय अदिन्न गिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं अदिन्न गिण्हाविज्जा अदिन्न गिण्हते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । तच्चे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण ॥

अन्वयार्थ —(भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत म (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमण) निवृत्त होना है-अत -(भते) हे भगवन् ! मैं (सव्व) सब प्रकार से (अदिन्नादाण) अदत्तादान-चोरी का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हू (से) वह इस प्रकार कि (गामे) ग्राम में (वा) अथवा (नगरे वा) नगर मे अथवा (रण्णे वा) जगल मे (अप्प वा) अल्प अथवा (बहुवा) बहुत (अणु) सूक्ष्म (वा) अथवा (थूलवा) स्थूल (चित्तमतवा) सचेतन अथवा (अचित्तमत वा) अचेतन आदि किसी भी (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ को (सय) मैं स्वयं (नेवगिण्हिज्जा) ग्रहण नही करूगा (नेवऽन्नेहि) न दूसरों से (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ का (गिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊंगा और (अदिन्न) बिना दिये हुए पदार्थ को (गिण्हते वि) ग्रहण करते हुए (अन्ने) दूसरों को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि'), भला भी न

समभूगा। (जावज्जीवाए से वोसिरामि) तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है (भंते) हे भगवन्! मैं (अदिन्नादाणाओ) अदत्तादान से (वेरमणं) निवृत्तिरूप (तच्चे) तीसरे (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू और उसकी प्रतिज्ञा करता हू।

अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्ख जोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवऽन्नेहिं मेहुणं से वाविज्जा मेहुणं सेवतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! (अहावरे) इसके बाद (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत में (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमणं) निवर्तन होता है। अतः (भंते) हे भगवन् मैं (सव्वं) सब प्रकार के (मेहुणं) मैथुन का (पच्चक्खामि) प्रत्याख्यान करता हू (से) वह इस प्रकार कि (दिव्वं) देव सम्बन्धी (वा) अथवा (माणुसंवा) मनुष्य सम्बन्धी अथवा (तिरिक्खजोणियं वा) तिर्यंच सम्बन्धी-इन तीनों जातियों मे किसी के भी साथ (मेहुणं) मैथुन को (सयं) मैं स्वयं (नेवसेविज्जा) सेवन नहीं करूंगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरों से (मेहुणं) मैथुन (सेवाविज्जा) सेवन कराऊंगा और (मेहुणं) मैथुन (सेवतेऽवि) सेवन करने वाले (अन्ने) दूसरों को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूंगा (जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि) तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। (भंते) हे भगवन्! मैं (सव्वाओ)

सब प्रकार के (मेहुणाओ) मैथुन से (वेरमण) निवृत्तिरूप (चउत्थे) चौथे (महव्वए) महाव्रत म (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू और प्रतिज्ञा करता हू ।

अहावरे पचमे भते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमण, सव्व भते ! परिग्गह पच्चक्खामि से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमत वा अचित्तमत वा नेव सय परिग्गह परिगिण्हिज्जा नेवऽन्नेहिं परिग्गह परिगिण्हाविज्जा परिग्गहं परिगिण्हतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते ! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि । पचमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥

अन्वयार्थ —(भते) हे भगवन् ! (अहावरे) इसके बाद (पचमे) पाचवें (महव्वए) महाव्रत म (परिग्गहाओ) परिग्रह से (वेरमण) निवृत्त होना है । अत (भते) हे भगवन् ! मैं (सव्व) सब प्रकार के (परिग्गह) परिग्रह का (पच्चक्खामि) त्यागता हू (से) वह इस प्रकार है (अप्प वा) अल्प अथवा (बहु वा) बहुत (अणु वा) सूक्ष्म अथवा (थूल वा) स्थूल (चित्तमत वा) सचेतन (अचित्तमतवा) अथवा अचेतन (परिग्गह) परिग्रह का (सय) मैं स्वय (नेव परिगिण्हिज्जा) ग्रहण नहीं करूगा (नेवऽन्नेहिं) न दूसरो से (परिग्गह) परिग्रह को (परिगिण्हाविज्जा) ग्रहण कराऊगा (परिग्गह) परिग्रह का (परिगिण्हतेऽवि) ग्रहण करने वाले (अन्ने) दूसरो का (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') अच्छा भी न समझूगा

(जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि) तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। (भंते) हे भगवन्! मैं (सव्वाओ) सब प्रकार के (परिग्गहाओ) परिग्रह से (वेरमण) निवर्तन रूप (पंचमे) पांचवें (महव्वए) महाव्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हू॥

भावार्थ—शिष्य सब प्रकार के परिग्रह से विरमण रूप पांचवें महाव्रत को स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमण, सव्व भंते! राइभोयण पच्चक्खामि से असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा नेव सय राइ भुंजिज्जा नेवन्नेहिं राइ भुंजाविज्जा राइ भुंजतेऽवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमण। इच्चेयाइ पंच महव्वयाइ राइभोयणवेरमणछट्ठाइ अत्तहियट्ठयाए उवसपज्जित्ता ण विहरामि॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! (अहावरे) इसके बाद (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन का (वेरमण) त्याग होता है अत (भंते) हे भगवन्! मैं (सव्व) सब प्रकार के (राइभोयण) रात्रिभोजन का (पच्चक्खामि) त्याग करता हू। (से) वह इस प्रकार है कि (असण वा) अन्नादि अथवा (पाण वा) पानी आदि अथवा (खाइम वा) खाद्य, मेवा अथवा (साइम वा) स्वाद्य-लौंग, इलायची आदि (सय) मैं स्वय (राइ) रात्रि में (नेव) नहीं (भुंजिज्जा 'भुंजेज्जा') खाऊंगा (नेवन्नेहिं) न दूसरों को (राइ) रात्रि

मे (भु जाविज्जा) खिलाऊंगा और (राइ) रात्रि में (भु जते ऽवि) भोजन करने वाले (अन्ने) दूसरों का (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला भी न समझूंगा। (जावज्जीवाए 'स' वोसिरामि) तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। (भंते) हे भगवन्! मैं (सव्वाओ) सब प्रकार के (राइभोयणाओ) रात्रि भोजन से (वेरमणं) निवृत्ति रूप (छट्ठे) छठे (वए) व्रत मे (उवट्ठिओमि) उपस्थित होता हूं।

(इच्चेयाइं) ये पहले कहे हुए (पंच महव्वयाइं) पांच महाव्रतों को और (राइभोयण वेरमण छट्ठाइं) रात्रि भोजन विरमण रूप छट्ठे व्रत को (अत्तहियट्ठयाए यट्ठिआए) आत्मकल्याण के लिए (उवसंपज्जित्ताणं) स्वीकार करके मैं (विहरामि) संयम मे विचरता हूं।

भावार्थ—अपनी आत्मा के कल्याण के लिए शिष्य अहिंसा आदि पांच महाव्रतों को और छठे रात्रिभोजन त्याग रूप व्रत को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है।

छ काय के जीवों की रक्षा के बिना चारित्र धर्म का पालन नहीं हो सकता। अतः छ काय के जीवों की रक्षा के विषय में सूत्रकार कहते हैं—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहावि

ज्जा न विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा विलिहंतं वा घट्टंतं वा भिंदतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

अन्वयार्थ —(संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे) संयमी, पाप से विरक्त, कर्मों की स्थिति को प्रतिहत करने वाला तथा पाप कर्मों के बंध का प्रत्याख्यान करने वाला (से) वह पूर्वोक्त महाव्रतों का धारण करने वाला (भिक्खू) साधु (वा) अथवा (भिक्खूणी वा) साध्वी (दिया वा) दिन में अथवा (राओ वा) रात्रि में (एगओ वा) अकेला अथवा (परिसागओ वा) साधु समूह में (सुत्ते वा) सोते हुए (जागरमाणे वा) अथवा जागते हुए (से) इस प्रकार (पुढविं वा) पृथ्वी को अथवा (भित्तिं वा) दीवार को (सिलं वा) शिला को अथवा (लेलुं वा) ढेले को (ससरक्खं वा कायं) सचित्त रज सहित शरीर को अथवा (ससरक्खं वा वत्थं) सचित्त रज सहित वस्त्र को (हत्थेण वा) हाथ से अथवा (पाएण वा) पैर से (कट्ठेण वा) लकड़ी से अथवा (किलिंचेण वा) दंडे से (अंगुलियाए वा) अंगुलि से अथवा (सिलागाए वा) लोह की छड़ से अथवा (सिलागहत्थेण वा) लोह की छड़ियों के समूह से (न आलिहिज्जा) सचित्त पृथ्वी पर लिखे नहीं (न विलिहिज्जा) विशेष लिखे नहीं (न घट्टिज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर गेरे नहीं (न भिंदिज्जा) भेदन न करे (अन्नं) दूसरे से (न आलिहाविज्जा) लिखावे नहीं (न विलिहाविज्जा) विशेष औरों से लिखावे नहीं (न घट्टाविज्जा) एक स्थान से दूसरे स्थान पर

गिरावे नहीं (न भिंदाविज्जा) भेदन न करावे (आलिहत वा) लिखने वाले (विलिहत वा) विशेष लिखने वाले (घट्टत वा) एक स्थान से दूसर स्थान पर ले जाने वाले (भिदत वा) भेदन करने वाले (अन्न) दूसर का (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि) भला भी न समझे। शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मैं (जावज्जीवाए) जीवन पर्यन्त (तिविह) तीन करण से और (तिविहेण) तीन योग से (मणेण) मन से (वायाए) वचन से (काएण) काया से (न करेमि) न करूँगा (न कारवेमि) न कराऊँगा (करतपि) करते हुए (अन्न) दूसरो को (न समणुजाणामि) भला भी न समझूँगा। (भंते) हे भगवन्! मैं (तस्स) उस पाप से अर्थात् सचित्त पृथ्वी जय पाप से (पडिक्कमामि) पृथक होता हूँ (निंदामि) आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ (गरिहामि) गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ (अप्पाण) ऐसे पापकारी कर्म से अपनी आत्मा को (वोसिरामि) हटाता हूँ।

भावार्थ—इस सूत्र मे पृथ्वीकाय की यतना का वर्णन किया गया है। अब आगे के सूत्र में अप्काय की यतना का वर्णन किया जायगा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदगं वा ओस वा हिम वा महिय वा करग वा हरितणुग वा सुद्धोदग वा उदउल्ल वा काय उदउल्ल वा वत्थ, ससिणिद्ध वा काय ससिणिद्ध वा वत्थ न आमुसिज्जा न सफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा अन्न न आमुसा-

विज्जा न सफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीला-
विज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आया-
विज्जा न पयाविज्जा अन्न आमुसत वा सफुसत वा
आवीलत वा पवीलत वा अक्खोडत वा पक्खोडत वा
आयावत वा पयावत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए
तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न
कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि । तस्स भते !
पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ —"से भिक्खूवा से जागरमाणे तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है' साधु अथवा साध्वी (उदगवा) जल को (ओमवा) ओस को (हिमवा) बर्फ को (महिय वा) धूवर के पानी को (करग वा) ओले के पानी को (हरितणुगवा–हरत-णुगवा) हरियाली पर पडे हुए जल बिन्दुओ को (सुद्धोदग वा) आकाश से गिरे हुए जल को (उदउल्ल वा काय) जल से भीगे हुए शरीर को (उदउल्ल वा वत्थ) जल से भीगे हुए वस्त्र को (ससिणिद्ध वा काय) कुछ कुछ भीगे हुए शरीर को (ससिणिद्ध वा वत्थ) कुछ कुछ भीगे हुए वस्त्र को (न आमुसिज्जा) जरा भी स्पर्श न करे (न सफुसिज्जा) अधिक स्पर्श न करे (न आवीलिज्जा) एक बार न दबावे निचोडे (न पवीलिज्जा) बार बार न दबावे निचोडे (न अक्खोडिज्जा) न झाडे (न पक्खोडिज्जा) बार बार न झाडे (न आयाविज्जा) न सुखावे (न पयाविज्जा) बार बार न सुखावे (अन्न) दूसरे से (न आमुसाविज्जा) जरा भी स्पर्श न करावे (न सफुसाविज्जा) बार बार स्पर्श न करावे (न आवीलाविज्जा) न निचोड़वावे (न पवीलाविज्जा) बार बार न निचोड़वावे (न अक्खोडाविज्जा) झड़कावे नहीं (न पक्खोडाविज्जा) बार बार झड़कावे

नहीं (न आयाविज्जा) न सुकवावे (न पयाविज्जा) बार बार न सुखवावे तथा (आमुसत वा) जरा भी स्पर्श करने वाले (सफुमत वा) बार बार स्पर्श करने वाले (आवीलत वा) दबाने वाले निचोड़ने वाले (पवीलत वा) बार बार दबाने वाले निचोड़ने वाले (अक्खोडन्त वा) झटकाने वाले (पक्खोडन्त वा) बार बार झटकाने वाले (आयावत वा) सुकाने वाले (पयावत वा) बार बार सुकाने वाले (अन्न) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा 'समणुजाणामि') भला न समझे। (जावज्जीवाए 'से' वोसिरामि') तक का पूर्ववत् अर्थ है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से अगणिं वा इगाल वा मुम्मुर वा अच्चि वा जाल वा अलाय वा सुद्धागणि वा उक्क वा न उजिज्जा न घटिज्जा न भिंदिज्जा न उज्जालिज्जा न पज्जालिज्जा न निव्वाविज्जा अन्न न उजाविज्जा न घटाविज्जा न भिंदाविज्जा न उज्जालाविज्जा न पज्जालाविज्जा न निव्वाविज्जा अन्न उज्जत वा घट्टत वा भिंदत वा उज्जालन वा पज्जालन वा निव्वावत वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ —"से भिक्खू वा से जागरमाणे तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है।" साधु अथवा साध्वी (अगणिं वा) अग्नि को (इगाल वा) अंगारे को (मुम्मुर वा) चिनगारी, बकरी आदि के मींगणों की अग्नि को (अच्चि वा) दीपक की शिखा को

अग्नि को (जाल वा) अग्नि के साथ मिली हुई ज्वाला को (अलाय वा) जलता हुआ कष्ठ या काष्ठ को अग्नि को (सुद्धागणि वा) काष्ठादि रहित शुद्ध अग्नि को (उक्क वा) उल्का पात रूप अग्नि को (न उजिज्जा) ईंधन डालकर न बढावे (न घट्टिज्जा) संघट्टा न करे (न भिंदिज्जा) छिन्न-भिन्न न करे (न उज्जालिज्जा) जरा भी न जलावे (न पज्जालिज्जा) प्रज्वलित न करे (न निव्वाविज्जा) न बुझाय (अन्न) दूसरे से (न उजाविज्जा) ईंधन डालकर न बढवावे (न घट्टाविज्जा) संघट्टा न करवावे (न भिंदाविज्जा) छिन्न भिन्न न करवाय (न उज्जालाविज्जा) न जलवावे (न पज्जालाविज्जा) प्रज्वलित न करवावे (न निव्वाविज्जा) न बुझवावे तथा (उजंत वा) ईंधन डालकर बढाने वाले (घट्टंत वा) संघट्टा करने वाले (भिंदत वा) छिन्न भिन्न करने वाले (उज्जालत वा) जलाने वाले (पज्जालत वा) प्रज्वलित करने वाले (अन्न) दूसरे का (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे। 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दो का अर्थ पूर्ववत् है। अब वायुकाय की यतना के विषय मे वर्णन किया जाता है —

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से सिएण वा विहुयणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पुग्गलं न फुमिज्जा न वीएज्जा अन्नं न फुमाविज्जा न वीआविज्जा अन्नं फुमंतं वा वीअंतं वा न

समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि । तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ — 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । साधु अथवा साध्वी (सिएण वा) चामर से (विहुयणेण वा) पंखे से (तालियंटेण वा) ताड़ वृक्ष के पंखे से (पत्तेण वा) पत्ते से (पत्तभंगेण वा) पत्तों के टुकड़ों से (साहाए वा) शाखा से (साहाभंगेण वा) शाखा के टुकड़ों से (पिहुणेण वा) मोर के पंखों से (पिहुणहत्थेण वा) मोर पिच्छी से (चेलेण वा) वस्त्र से (चेलकन्नेण वा) कपड़े के पल्ले से (हत्थेण वा) हाथ से (मुहेण वा) मुख से (अप्पणा) अपने (कायं) शरीर को (वा) अथवा (बाहिरं वा वि) बाहरी पुद्गलों को (न फुमिज्जा) फूंक न मारे (न वीएज्जा) पंखे आदि से हवा न करे (अन्नं) दूसरे से (न फुमाविज्जा) फूंक न लगवावे (न वीआविज्जा) पंखे आदि से हवा न करावे (फुमंतं वा) फूंक देने वाले (वीअंतं वा) हवा करने वाले (अन्नं) दूसरे को (न समणुजाणिज्जा) भला भी न समझे । 'जावज्जीवाए से वोसिरामि' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है । अब वनस्पतिकाय की यतना का वर्णन किया जाता है —

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्न

पट्टेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुअट्टिज्जा अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीआविज्जा न तुअट्टाविज्जा अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीअंतं वा तुअट्टंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्वयार्थ — 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (बीएसु वा) बीजों पर (बीयपट्टेसु वा) बीजों पर रखे हुए शयन आसन आदि पर (रूढेसु वा) बीज उगकर जो अंकुरित हुए हों उन पर (रूढपइट्ठेसु वा) अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (जाएसु वा) पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर (जायपइट्ठेसु वा) पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर रखे हुए आसनादि पर (हरिएसु वा) हरी दूब आदि पर (हरियपइट्ठेसु वा) हरी दूब आदि पर रखे हुए आसन आदि पर (छिन्नेसु वा) वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर (छिन्नपइट्ठेसु वा) वृक्ष की कटी हुई हरी शाखाओं पर रखे हुए आसनादि पर (सचित्तेसु वा) ऐसी वनस्पति जिस पर अण्डा आदि हों (सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा) घुन लगे हुए काठ पर (न गच्छेज्जा) न चले (न चिट्ठेज्जा) खड़ा न होवे (न निसीइज्जा) न बैठे (न तुअट्टिज्जा) न सोवे (अन्नं) दूसरे को (न गच्छाविज्जा) न चलावे (न चिट्ठाविज्जा) न खड़ा करे (न निसीआविज्जा) न बैठावे (न तुअट्टाविज्जा) न सुलावे (गच्छंतं वा) चलते हुए (चिट्ठंतं वा) खड़े हुए (निसीअंत

वा) बैठे हुए (तुयट्टन्त वा) सोते हुए (अन्नं) दूसरे का (न समणुजाणिज्जा) भला भी न जाने। 'जावज्जीवाए' से वोसिरामि तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। आगे त्रसकाय की यतना का वर्णन किया जाता है—

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंग वा कुंथुं वा पिपीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणिज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा ॥

अन्वयार्थ — 'से भिक्खू वा से जागरमाणे' तक शब्दों का अर्थ पूर्ववत् है। साधु अथवा साध्वी (कीडं वा) कीड़े मकोड़े को (पयंगं वा) पतंगे को (कुंथुं वा) कुंथवा को (पिपीलियं वा) पिपीलिका चींटी को (हत्थंसि वा) हाथ पर (पायंसि वा) पैर पर (बाहुंसि वा) भुजा पर (ऊरुंसि वा-ऊरंसि वा) जांघ पर (उदरंसि वा) पेट पर (सीसंसि वा) सिर पर (वत्थंसि वा) वस्त्र पर (पडिग्गहंसि वा) पात्र पर (कंबलंसि वा) कम्बल पर (पायपुच्छणंसि वा) पैर पोंछने के उपकरण विशेष पर (रयहरणंसि वा) रजोहरण पर (गोच्छगंसि वा-गुच्छगंसि वा) पूंजनी पर या पात्रों को पोंछने के वस्त्र पर (उंडगंसि

वा) स्थण्डिल पात्र पर (दडगसि वा) दड पर (पीढगसि वा) चौकी पर (फलगसि वा) पाटे पर (सेज्जसि वा) शय्या पर (सथारगसि वा) सथारे पर (वा) अथवा (तहप्पगारे) इसी प्रकार के (अन्नयरसि वा) किसी दूसरे (उवगरणजाए) उप करण पर पडे हुए कोडे आदि जीव को (तम्रो) उस स्थान से अर्थात् हाथ पैर आदि पर से (सजयामेव) यतना पूर्वक (पडि-लेहिय पडिलेहिय) बार बार अच्छी तरह स प्रतिलेखना करके (पमज्जिय पमज्जिय) बार बार सम्यक् प्रकार से पूजकर एगन) एकात स्थान मे (अवणिज्जा) रख दे किन्तु उन जीवों को (नो ण सघायमावज्जेज्जा) पीडा पहुचे इस तरह से इकट्ठा करके न रखे।

अजय चरमाणो अ पाणाभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥१॥

अजय चिट्ठमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥२॥

अजय आसमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥३॥

अजय सयमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥४॥

अजय भुजमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥५॥

अजय भासमाणो अ, पाणभूयाइ हिंसइ।
बधइ पावय कम्म, त से होइ कडुय फल ॥६॥

अन्वयार्थ — (अजय) अयतना पूर्वक (चरमाणा) चलता हुआ (चिट्ठमाणो) खड़ा होता हुआ (आसमाणो) बैठता हुआ (सयमाणो) सोता हुआ (भुंजमाणो) भोजन करता हुआ और (भासमाणो) बोलता हुआ व्यक्ति (पाणभूयाइ) त्रस स्थावर जीवों की (हिंसइ) हिंसा करता है (अ) जिनसे (पावय) पाप (कम्म) कर्म का (बंधइ) बंध होता है (त) वह पाप कर्म (से) उस प्राणी के लिए (कडुयं) कटुक (फल) फलदायी (होइ) होता है ॥१-६॥

भावार्थ — इन छः गाथाओं में अयतनापूर्वक चलने, खड़ा रहने, बैठने, सोने आदि का कडुआ फल बतलाया गया है जो स्वयं उसी आत्मा को भोगना पड़ता है।

> कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
> कहं भुंजतो भासतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥७॥

अन्वयार्थ — अब शिष्य प्रश्न करता है कि—हे भगवन्! यदि ऐसा है तो मुनि (कहं) कैसे (चरे) चले (कहं) कैसे (चिट्ठे), खड़ा रहे (कहं) कैसे (आसे) बैठे (कहं) कैसे (सए) सोवे (कहं) कैसे (भुंजतो) भोजन करता हुआ और (कहं) कैसे (भासतो) बोलता हुआ (पावं) पाप (कम्मं) कर्म (न) नहीं (बंधइ) बांधता है ॥७॥

> जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
> जयं भुंजतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥८॥

अन्वयार्थ — गुरु उत्तर देते हैं कि (जयं) यतनापूर्वक (चरे) चले (जयं) यतनापूर्वक (चिट्ठे) खड़ा रहे (जयं) यतनापूर्वक (आसे) बैठे (जयं) यतना पूर्वक (सए) सोवे (जयं)

यतनापूर्वक (भुंजतो) भोजन करता हुआ और (जयं) यतना पूर्वक (भासतो) बोलता हुआ (पावं) पाप (कम्मं) कर्म (न) नहीं (बंधइ) बांधता है ॥८॥

> सव्व भूयप्प भूयस्स, सम्मं भूयाइ पासग्रो ।
> पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ ॥६॥

अन्वयार्थ — (सव्वभूयप्पभूयस्स) संसार के समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझने वाले (सम्मं) सम्यक् प्रकार से (भूयाइ) सब जीवों को (पासग्रो) देखने वाले (पिहियासवस्स) आश्रवों को रोकने वाले और (दंतस्स) इन्द्रियों को दमन करने वाले के (पावं) पाप (कम्मं) कर्म (न) नहीं (बंधइ) बांधता है ॥६॥

> पढमं नाणं तग्रो दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए ।
> अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं ॥१०॥

अन्वयार्थ — (पढमं) पहले (नाणं) ज्ञान है (तग्रो) उसके पश्चात् (दया) दया है (एवं) इस प्रकार (सव्व संजए) सब साधु (चिट्ठइ) आचरण करते हैं। (अन्नाणी) सम्यग् ज्ञान से रहित अज्ञानी पुरुष (किं) क्या (काही) कर सकता है और (किंवा) कैसे (सेय छेयं पावगं) पुण्य और पाप को (नाही) जान सकता है।

भावार्थ — सब से पहिला स्थान ज्ञान का है और उसके बाद दया अर्थात् क्रिया का है। ज्ञानपूर्वक क्रिया करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अज्ञानी जिसे साध्य साधन का भी ज्ञान नहीं है वह क्या कर सकता है? वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है?

सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग ।
उभय पि जाणइ सोच्चा, ज सेय त समायरे ॥११।

अन्वयार्थ - (सोच्चा) सुनकर ही (कल्लाण) कल्याण को (जाणइ) जानता है (सोच्चा) सुनकर ही (पावग) पाप को (जाणइ) जानता है और (उभयपि) दोनो को पुण्य पाप को भी (सोच्चा) सुनकर ही (जाणइ) जानता है मन (ज) जो (सेय) आत्मा के लिये हितकारी हो (त) उसका (समायरे) आचरण करे ॥११॥

भावार्थ — हिताहित का ज्ञान सुनकर ही होता है। इसलिए इनमे स जो श्रेष्ठ हो उसी मे प्रवृत्ति करनी चाहिए।

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ ।
जीवा जीवे अयाणतो, कह सो नाहीइ सजम ॥१२॥

अन्वयार्थ — (जो) जो (जीवे वि) जीव के स्वरूप को (न) नहीं (याणेइ) जानता और (अजीवे वि) अजीव के स्वरूप को भी (न) नहीं (याणेइ) जानता। (जीवाजीवे) इस प्रकार जीवाजीव के स्वरूप को (अयाणतो) नहीं जानने वाला (सो) वह साधक (सजम) संयम को (कह) कैसे (नाहीइ) जानेगा अर्थात् नहीं जान सकता ॥१२।

जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ ।
जीवा जीवे वियाणन्तो सो हु नाहीइ सजम ॥१३।

अन्वयार्थ — (जो) जो (जीवे वि) जीव का स्वरूप (वियाणेइ-वियाणइ) जानता है तथा (अजीवे वि) अजीव का स्वरूप भी (वियाणेइ) जानता है। इस प्रकार (जीवाजीवे) जीव और अजीव के स्वरूप का (वियाणन्तो) जानने वाला (सो)

वह साधक (हु) निश्चय ही (सजमं) सयम के स्वरूप को (नाहीइ) जान सकेगा।

जया जीवमजीवे य दोवि एए वियाणइ।
तया गइ बहुविहं, सव्व जीवाण जाणइ ॥१४॥

अन्वयार्थ — (जया) जब आत्मा (जीवमजीवे) जीव और अजीव (एए) इन दोनों को (वियाणाइ) जान लेता है (तया) तब (सव्व जीवाण) सब जीवों की (बहुविहं) बहुत भेदों वाली (गइ) नर तिर्यंच आदि नाना विध गति को भी (जाणइ) जान लेता है ॥१४॥

भावार्थ — इस गाथा में तथा आगे की गाथाओं मे ज्ञान-प्राप्ति से लेकर मोक्षप्राप्ति तक का क्रम बतलाया गया है।

जया गइ बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्ण च पाव च, बंध मुक्ख च जाणइ ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जया) जब आत्मा (सव्व जीवाण) सब जीवों की (बहुविय) बहुत भेदों वाली (गइ) नरक तिर्यंच आदि नाना विध गति को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बध) बंध (च) और (मुक्ख) मोक्ष को भी (जाणइ) जान लेता है ॥१५॥

जया पुण्ण च पाव च बंध मुक्ख च जाणइ।
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे अ माणुसे ॥१६॥

अन्वयार्थ — (जया) जब (पुण्ण) पुण्य (च) और (पाव) पाप को (च) तथा (बंधं) बन्ध (च) और (मुक्ख)

(लोग) लोक (च) और (अलोगं) अलोक के स्वरूप को भी (जाणइ) जान लेता है ॥२२॥

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरु भित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

अन्वयार्थ — (जया) जब (जिणो) राग द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर (लोगं) लोक (च) और (अलोगं) अलोक को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब आत्मा (जोगे) मन वचन काया के योगों को (निरु भित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है ॥२३॥

जया जोगे निरु भित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥२४॥

अन्वयार्थ — (जया) जब (जोगे) मन वचन काया के योगों का (निरु भित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है। (तया) तब आत्मा (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्मं) समस्त कर्मों का (खवित्ताणं) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है ।२४॥

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

अन्वयार्थ – (जया) जब (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्मं) समस्त कर्मों का (खवित्ताणं) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है। (तया) तब आत्मा (लोगमत्थयत्थो) लोक के अग्रभाग पर स्थित (सासओ) शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) हो जाता है ।२५॥

सुह सायगस्स समणस्स, साया उलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥२६॥

अन्वयार्थ — (सुहसायगस्स) सुख में आसक्त रहने वाले (सायाउलगस्स) सुख के लिए व्याकुल रहने वाले (निगामसाइस्स) अत्यन्त सोने वाले (उच्छोलणा पहोयस्स) शरीर की विभूषा के लिए हाथ पैर आदि धोने वाले (तारिसगस्स समणस्स) साधु को (सुगइ) सुगति मिलना (दुल्लहा) दुलभ है ।

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खतिसजमरयस्स ।
परीसहे जिणतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स ।२७॥

अन्वयार्थ — (तवोगुणपहाणस्स) तपरूपी गुणों से प्रधान (उज्जुमइ) सरल बुद्धि वाले (खतिसजमरयस्स) क्षमा और सयम में रत (परीसहे) परिषहों को (जिणतस्स) जीतने वाले (तारिसगस्स) साधु को (सुगई) सुगति मोक्ष मिलना (सुलहा) सुलभ है ॥२७॥

भावार्थ — तप सयम में अनुरक्त सरल प्रकृति वाले तथा बाईस परिषहों को समभाव पूवक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है ।

पच्छावि ते पयाया, खिप्प गच्छति अमरभवणाइ ।
जेसि पिओ तवो सजमो अ खती अ बभचेर च ॥२८॥

अन्वयार्थ - (जसि) जिनको (तवो) तप (अ) और (सजमो) सयम (अ) तथा (खती) क्षमा (च) और (बभचेर) ब्रह्मचय (पिओ) प्रिय है, ऐसे साधक यदि (पच्छावि) अपनी पिछली अवस्था में भी वृद्धावस्था में भी (पयाया) चढ़े

(लोग) लोक (च) और (अलोग) अलोक के स्वरूप को भी (जाणइ) जान लेता है ॥२२॥

जया लोगमलोग च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरु भित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥२३॥

अन्वयार्थ — (जया) जब (जिणो) राग द्वेष का विजेता (केवली) केवलज्ञानी होकर (लोग) लोक (च) और (अलोग) अलोक को (जाणइ) जान लेता है। (तया) तब आत्मा (जोगे) मन वचन काया के योगों को (निरु भित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है ॥२३॥

जया जोगे निरु भित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥२४॥

अन्वयार्थ — (जया) जब (जोगे) मन वचन काया के योगों का (निरु भित्ता) निरोध करके (सेलेसिं) शैलेशी करण को (पडिवज्जइ) प्राप्त करता है। (तया) तब आत्मा (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्मं) समस्त कर्मों का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है ॥२४॥

जया कम्मं खवित्ताण, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥२५॥

अन्वयार्थ - (जया) जब (नीरओ) कर्मरूपी रज से रहित होकर और (कम्मं) समस्त कर्मों का (खवित्ताण) क्षय करके (सिद्धिं) मोक्ष को (गच्छइ) चला जाता है। (तया) तब आत्मा (लोगमत्थयत्थो) लोक के अग्रभाग पर स्थित (सासओ) शाश्वत (सिद्धो) सिद्ध (हवइ) हो जाता है।२५।

सुह सायगस्स समणस्स, साया उलगस्स निगामसाइस्स ।
उच्छोलणा पहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥२६॥

अन्वयार्थ — (सुहसायगस्स) सुख में आसक्त रहने वाले (सायाउलगस्स) सुख के लिए व्याकुल रहने वाले (निगाम साइस्स) अत्यन्त सोने वाले (उच्छोलणा पहोयस्स) शरीर की विभूषा के लिए हाथ पैर आदि धोने वाले (तारिसगस्स समणस्स) साधु को (सुगइ) सुगति मिलना (दुल्लहा) दुर्लभ है ।

तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स ।
परीसहे जिणतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स ।२७॥

अन्वयार्थ — (तवोगुणपहाणस्स) तपरूपी गुणों से प्रधान (उज्जुमइ) सरल बुद्धि वाले (खंतिसंजमरयस्स) क्षमा और संयम में रत (परीसहे) परिषहों को (जिणतस्स) जीतने वाले (तारिसगस्स) साधु को (सुगई) सुगति-मोक्ष मिलना (सुलहा) सुलभ है ॥२७॥

भावार्थ — तप संयम में अनुरक्त सरल प्रकृति वाले तथा बाईस परिषहों को समभाव पूर्वक सहन करने वाले साधक के लिए सुगति प्राप्त होना सरल है ।

पच्छावि ते पयाया, खिप्प गच्छंति अमरभवणाइ ।
जेंसि पिम्रो तवो संजमो म्र खंती म्र बंभचेर च ॥२८॥

अन्वयार्थ – (जंसि) जिनको (तवो) तप (म्र) और (संजमो) संयम (म्र) तथा (खंती) क्षमा (च) और (बंभचेर) ब्रह्मचर्य (पिम्रो) प्रिय है, ऐसे साधक यदि (पच्छावि) अपनी पिछली अवस्था में भी वृद्धावस्था में भी (पयाया) चढ़ने

पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जंतो बीय हरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥३॥

अन्वयार्थ — (पुरओ) सामने (जुगमायाए) धूसर चार हाथ प्रमाण (महिं) पृथ्वी को (पेहमाणो) देखता हुआ मुनि (बीय हरियाइं) बीज और हरी वनस्पति (पाण) बेइन्द्रियादिक प्राणी (य) और (दगमट्टियं) सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टी को (वज्जंतो) वजता हुआ बचाता हुआ (चरे) चले ॥३॥

ओवायं विसमं खाणुं, विज्जलं परिवज्जए ।
संकमेण न गच्छिज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥४॥

अन्वयार्थ — (परक्कमे) यदि दूसरा अच्छा मार्ग (विज्जमाणे) हो तो-साधु (ओवायं) जिस मार्ग में गिर पडने की शंका हो (विसमं) जो मार्ग खड्डे आदि के कारण विकट हो (खाणुं) जो मार्ग काटे हुए धान्य के डंठलों से युक्त हो और (विज्जलं) जो मार्ग कीचड़ युक्त हो-ऐसे मार्ग को (परिवज्जए) छोड देवे तथा-(संकमेण) कीचड़ आदि के कारण उल्लंघने के लिए जिस मार्ग में ईंट, काठ आदि रखे हुए हों, ऐसे मार्ग से भी मुनि (न) नहीं (गच्छिज्जा) जावे ॥४॥

पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजए ।
हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे ॥५॥

अन्वयार्थ — उपरोक्त मार्ग से जाने में हानि बतलाते हैं (से) उस मार्ग से जाते हुए (संजए) साधु का (व) यदि (तत्थ) वहाँ (पक्खलंते) पैर फिसल जाय (व) अथवा

(पवडते) खड्डे आदि में गिर जाय तो (तसे) त्रस द्वीन्द्रियादिक (अदुव) अथवा (थावरे) स्थावर-एकेन्द्रियादिक (पाणभूयाइ) प्राणी भूतो की (हिंसेज्जा) हिंसा होती है ॥५॥

भावार्थ —साधु उपरोक्त विषम मार्ग से गमन न करे क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से आत्मविराधना और संयम-विराधना होने की संभावना रहती है ।

तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजए सुसमाहिए ।
सइ अण्णेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ।६।

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (सुसमाहिए) सुसमाधिवत (संजए) साधु (सइ अण्णेण मग्गेण) यदि कोई दूसरा अच्छा मार्ग हो तो (तेण) उस विषम मार्ग से (न) नहीं (गच्छिज्जा) जावे । यदि कदाचित् दूसरा अच्छा मार्ग न हो तो उसी मार्ग से मुनि (जयमेव यतना पूर्वक (परक्कमे) गमन करे ॥६॥

इगाल छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं ।
ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं न इक्कमे ॥७॥

अन्वयार्थ — (संजओ) साधु (ससरक्खेहिं) सचित्त रज से भरे हुए (पाएहिं) पैरों से (तं) उस (इगाल) कोयलो के ढेर को तथा (छारियंरासिं) राख के ढेर को (तुसरासिं) तुषो भूसे के ढेर को (च) और (गोमयं) गोबर के ढेर को (न इक्कमे) न उल्लघे ।७॥

न चरेज्ज वासे वासते, महियाए वा पडतिए ।
महावाए व वायंते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥८॥

अन्वयार्थ — (वासे वासते) वर्षा बरसती हो (वा)

अथवा (महियाए) धूअर-कुहरा (पडतिए) गिरता हो (व) अथवा (महावाए वायते) महावायु-आंधी चलती हो (वा) अथवा (तिरिच्छसपाइमेसु) पतंगिया आदि अनेक प्रकार के जीव इधर उधर उड रहे हों तो ऐसे समय में साधु (न चरेज्ज) गोचरी के लिये बाहर न जावे ॥८॥

> न चरेज्ज वेस सामते, बभचेर वसाणुए ।
> बभयारिस्स दतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥९॥

अन्वयार्थ — (बभचेरवसाणुए) ब्रह्मचर्य की रक्षा चाहने वाले साधु को (वेससामते) वेश्या के मोहल्ले में (न चरेज्ज) गोचरी न जाना चाहिए क्योंकि (तत्थ) वहां गोचरी जाने से (दतस्स) इन्द्रियों को दमन करने वाले (बभयारिस्स) ब्रह्मचारी साधु का (विसुत्तिया) चित्त चचल (हुज्जा होज्जा) हो सकता है ॥९॥

> अणायणे चरतस्स, ससग्गीए अभिक्खण ।
> हुज्ज वयाण पीला, सामण्णम्मि य ससओ ॥१०॥

अन्वयार्थ — (अणायणे अणाययणे) वेश्याओं के मोहल्ले में अथवा इसी प्रकार के दूसरे अयोग्य स्थानों में (चरतस्स) गोचरी आदि के लिए जाने वाले साधु के (अभिक्खणं) बार-बार (ससग्गीए) ससर्ग होने के कारण (वयाणं) महाव्रतों को (पीला) पीडा (हुज्ज) होती है अर्थात् महाव्रत दूषित होने की आशका रहती है (य) और इतना ही नहीं किन्तु साधु को (सामण्णम्मि) साधुपने में भी (ससओ) सन्देह हो जाता है-अथवा दूसरे लोगों को उस साधु के चारित्र में सन्देह हो जाता है ॥१०॥

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ।
वज्जए वेससामत, मुणी एगतमस्सिए ॥११॥

अन्वयार्थ —(तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) दुर्गति को बढाने वाले (एअ) इन उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर (एगतमस्सिए) एकात मोक्ष का अभिलाषी (मुणी) मुनि (वेस सामत) वेश्याओ के मोहल्ले और इसी प्रकार के अयोग्य स्थानो को (वज्जए) छोड दे अर्थात् वहाँ न जावे ॥११॥

भावार्थ — ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए ऐसे उपरोक्त स्थानो मे जाना साधु को मना किया है क्योकि ऐसे स्थानों में जाने से साधु का मन चचल हो सकता है, जिससे उसका मन शुभ कार्यों में न लगकर आर्त्त रौद्रध्यान करने लगता है। इसलिए साधु ऐसे ससग को ही टाल दे ।

साण सूइअ गावि दित्त गोण हय गय ।
सडिम्भ कलह जुद्ध, दूरओ परिवज्जए ॥१२॥

अन्वयार्थ— मार्ग की यतना विशेष रूप से बतलाई जाती है (साण) जहा काटने वाला कुत्ता हो (सूइअ) नवप्रसूता-थोडे काल की ब्याई हुई (गावि) गाय हो (दित्त) मदोन्मत्त (गोण) गाधा-बल हो (हय) मदोन्मत्त घोडा हो (गय) मदोन्मत्त हाथी हो और (सडिम्भ-सडिम्भ) जहा बच्चे खेल रहे हो तथा (कलह) जहा परस्पर गाली गलोज हो रहा हो अथवा (जुद्ध) शस्त्र आदि से युद्ध हो रहा हो ऐसे स्थानो को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ऐसे स्थानो मे न जावे ॥१२॥

अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले ।
इन्दियाइ जहाभाग, दमइत्ता मुणी चरे ॥१३॥

अन्वयार्थ — मार्ग मे किस प्रकार चलना चाहिए, इस विषय मे कहते हैं कि (मुणी) गोचरी के लिए घूमता हुआ साधु (अणुन्नए) द्रव्य से बहुत ऊपर की तरफ न देखता हुआ तथा भाव से जात्यादि के अभिमान से रहित (नावणए) द्रव्य से शरीर को बहुत न झुकाकर तथा भाव स दीनता रहित (अप्पहिट्ठे) हर्षित न होता हुआ (अणाउले) तथा व्याकुलता रहित (इंदियाइ) इन्द्रियों का (जहाभाग) यथाक्रम से (दमइत्ता) दमन करता हुआ (चरे) चले ॥१३॥

दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।
हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुल उच्चावयं सया ॥१४॥

अन्वयार्थ — (गोयरे) गोचरी के लिए साधु (दवदवस्स) अति शीघ्रता से दडबड दडबड दौडता हुआ (न) न (गच्छेज्जा) जावे (य) और (हसतो) हसता हुआ तथा (भासमाणो) बोलता हुआ भी (नाभिगच्छेज्जा) न जावे किन्तु (सया) हमेशा (उच्चावय) ऊच-नीच (कुल) कुल मे ईर्यासमिति पूर्वक गोचरी जावे ॥१४॥

आलोअ थिग्गल दार, सधि दगभवणाणि य ।
चरतो न विणिज्झाए, सकट्ठाण विवज्जए ॥१५॥

अन्वयार्थ — (चरतो) भिक्षा के लिए फिरता हुआ साधु (आलोअ) जाली झरोखे को (थिग्गल) दीवाल के छेद को (दार) द्वार को (सधि) भीत की साध को अथवा चोरों द्वारा किये हुए भींत के छेद को (य) और (दगभव

णाणि) पलेण्डा आदि के स्थान को (न विणिज्झाए) टक-टकी लगाकर न देखे क्योकि ये सब (सकट्ठाण) शका के स्थान हैं। इसलिए इन्हे (विवज्जए) विशेप रूप से त्याग दे ॥१५॥

भावार्थ — ऐसे शका स्थानो को देखने से गृहस्थ को साधु के प्रति चोर-लम्पट आदि का सन्देह हो सकता है।

रण्णो गिहवईण च, रहस्सारक्खियाण य।
सकिलेसकर ठाण, दूरओ परिवज्जए। १६॥

अन्वयार्थ — साधु (रण्णो) राजा के (गिहवईण) गृहपतियो के सेठो के (य) और (आरक्खियाण) नगर की रक्षा करने वाले कोटवाल आदि के (रहस्स) गुप्त बातचीत करने के स्थानों को (दूरओ) दूर ही से (परिवज्जए) त्याग देवे अर्थात ऐसे स्थानो मे न जावे, क्योकि ऐसे (ठाण) स्थान (सकिलेसकर) सयम में असमाधि उत्पन्न करने वाले हैं। १६॥

भावार्थ — राजा आदि के गुप्त बातचीत करने के स्थान की तरफ देखन से उनको साधु के प्रति शक तथा अश्रद्धा आदि अनेक दोप उत्पन्न होने की सभावना रहती है।

पडिकुट्ठ कुल न पविसे, मामग परिवज्जए।
अचियत्त कुल न पविसे, चियत्त पविसे कुल ॥१७॥

अन्वयार्थ — साधु (पडिकुट्ठ) शास्त्र निपिद्ध (कुल) कुल में (न पविसे) गोचरी के लिए न जावे तथा (मामग) जिस घर का स्वामी यह कह दे कि मेरे घर मत आओ ऐसे घर मे साधु (परिवज्जए) न जावे तथा (अचियत्त)

अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले ।
इन्दियाइं जहाभाग, दमइत्ता मुणी चरे ॥१३॥

अन्वयार्थ.— मार्ग मे किस प्रकार चलना चाहिए, इस विषय में कहते हैं कि (मुणी) गोचरी के लिए घूमता हुआ साधु (अणुन्नए) द्रव्य से बहुत ऊपर की तरफ न देखता हुआ तथा भाव से जात्यादि के अभिमान से रहित (नाव णए) द्रव्य से शरीर को बहुत न झुकाकर तथा भाव मे दीनता रहित (अप्पहिट्ठे) हर्षित न होता हुआ (अणाउले) तथा व्याकुलता रहित इदियाइं) इन्द्रियों का (जहाभाग) यथाक्रम से (दमइत्ता) दमन करता हुआ (चरे) चले ॥१३॥

दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे,।
हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुल उच्चावयं सया ॥१४॥

अन्वयार्थ — (गोयरे) गोचरी के लिए साधु (दव दवस्स) अति शीघ्रता से दबड दबड दौडता हुआ (न) न (गच्छेज्जा) जावे (य) और (हसतो) हसता हुआ तथा (भासमाणो) बोलता हुआ भी (नाभिगच्छेज्जा) न जावे किन्तु (सया) हमेशा (उच्चावयं) ऊच-नीच (कुल) कुल मे ईर्यासमिति पूर्वक गोचरी जावे ॥१४॥

आलोअं थिग्गलं दार, संधि दगभवणाणि य ।
चरतो न विणिज्झाए, सकट्ठाणं विवज्जए ॥१५॥

अन्वयार्थ — (चरतो) भिक्षा के लिए फिरता हुआ साधु (आलोअं) जाली झरोखे या (थिग्गलं) दीवाल के छेद या (दार) द्वार को (संधि) भीत की सांध को अथवा चोरों द्वारा किये हुए भीत में छेद को (य) और (दगभव-

णाणि) पलेण्डा आदि के स्थान को (न विणिज्झाए) टक-टकी लगाकर न देखे क्योंकि ये सब (सकट्ठाण) शका के स्थान हैं। इसलिए इन्हे (विवज्जए) विशेष रूप से त्याग दे ॥१५॥

भावार्थ — ऐसे शका स्थानो को देखने से गृहस्थ को साधु के प्रति चोर-लम्पट आदि का सन्देह हो सकता है।

रण्णो गिहवईण च, रहस्सारक्खियाण य।
सकिलेसकर ठाण, दूरओ परिवज्जए ।१६॥

अन्वयार्थ — साधु (रण्णो) राजा के (गिहवईण) गृहपतियो के सेठो के (य) और (आरक्खियाण) नगर की रक्षा करने वाले कोटवाल आदि के (रहस्स) गुप्त बात-चीत करने के स्थानो को (दूरओ) दूर ही से (परिवज्जए) त्याग देवे अर्थात ऐसे स्थानो मे न जावे, क्योकि ऐसे (ठाण) स्थान (सकिलेसकर) सयम मे असमाधि उत्पन्न करने वाले हैं।१६॥

भावार्थ — राजा आदि के गुप्त बातचीत करने के स्थान की तरफ देखने से उनको साधु के प्रति क्रोध तथा अश्रद्धा आदि अनेक दोष उत्पन्न होने की समावना रहती है।

पडिकुट्ठ कुल न पविसे, मामग परिवज्जए।
अचियत्त कुल न पविसे, चियत्त पविसे कुल ॥१७॥

अन्वयार्थ — साधु (पडिकुट्ठ) शास्त्र निषिद्ध (कुल) कुल में (न पविसे) गोचरी के लिए न जावे तथा (मामग) जिस घर का स्वामी यह कह दे कि मेरे घर मत आओ ऐसे घर मे साधु (परिवज्जए) न जावे तथा (अचियत्त)

प्रतीति रहित (कुलं) कुल मे (न पविसे) न जावे किन्तु (चियत्तं) प्रतीति वाले (कुल) कुल मे (पविसे) जावे ॥१७॥

> साणी पावार पिहियं, अप्पणा नावपंगुरे।
> कवाड नो पणुल्लिज्जा, उग्गहंसि अजाइया ॥१८॥

अन्वयार्थ — (सि-से) घर के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) मांगे बिना (साणीपावार पिहियं) सन आदि के बने हुए परदे आदि से ढके हुए घर को (अप्पणा) साधु स्वयं (नावपंगुरे) न खोले अर्थात् परदे को न हटावे तथा (कवाड) किवाड को भी (नो) न (पणुल्लिज्जा) खोले ॥१८॥

> गोयरग्ग पविट्ठो य, वच्चमुत्तं न धारए।
> ओगासं फासुयं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे ॥१९॥

अन्वयार्थ — (गोयरग्गपविट्ठो) गोचरी के लिए गया हुआ साधु (वच्च) मल (य) और (मुत्तं) मूत्र को (न धारए) न रोके अर्थात् मलमूत्र की बाधा उपस्थित होने पर उनके वेग को न रोके किन्तु (फासुयं) प्रासुक जीव रहित (ओगासं) जगह को (नच्चा) देखकर (अणुन्नविय) गृहस्थ की आज्ञा लेकर (वोसिरे) मलमूत्र का त्याग करे ॥१९॥

भावार्थ — मलमूत्र की बाधा से निवृत्त होकर ही साधु को गोचरी के लिए जाना चाहिए किन्तु यदि कदाचित् रास्ते में आकस्मिक बाधा हो जाय तो निरवद्य स्थान देखकर उस स्थान के मालिक की आज्ञा लेकर वहाँ बाधा का निवारण करे।

> नीयदुवारं तमसं, कुट्ठगं परिवज्जए।
> अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥२०॥

अन्वयार्थ — (णीयदुवार णीय दुवार) जिस मकान का द्वार बहुत नीचा हो ऐसे मकान को (तमस) प्रकाश रहित (कुट्ठग) कोठे को साधु (परिवज्जए) छोड दे-अर्थात् ऐसे मकान मे आहार पानी के लिए न जावे। (जत्थ) जहाँ (अचक्खुविसओ) आखो से भली प्रकार दिखाई न देने के कारण (पाणा) द्वीन्द्रियादिक प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) प्रतिलेखना नही हो सकती। अतएव उनकी विराधना होने की सभावना रहती है ॥२०॥

जत्थ पुप्फाइ बीयाइ, विप्पइन्नाइ कोट्ठए ।
अहुणोवलित्त उल्ल, दट्ठूण परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ — (जत्थ) जिस (कोट्ठए कुट्ठए) कोठे मे (पुप्फाइ) फूल और (बीयाइ) बीज (विप्पइन्नाइ) बिखरे हुए हो उस मकान को तथा (अहुणोवलित्त) तत्काल के लीपे हुए (उल्ल) गीले मकान को (दट्ठूण) देखकर (परिवज्जए) छोड दे अर्थात् ऐसे स्थान मे साधु गोचरी न जावे ।२१॥

एलग दारग साण, वच्छग वावि कोट्ठए ।
उल्लघिया न पविसे विउहित्ताण व सजए ॥२२॥

अन्वयार्थ — (कोट्ठए-कुट्ठए) जिस कोठे के दरवाजे पर (एलग) भेड हो (दारग) बालक हो (साण) कुत्ता हो (वच्छग) बछडा हो (वावि) अथवा इस प्रकार के दूसरे अर्थात् बकरा, बकरी पाडा, पाडी आदि हों तो (उल्लघिया) उल्लघन करके अथवा (विउहित्ताण) (सजए) साधु (न पविसे) प्रवेश न करे ।२२।

असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं न विनिज्झाए नियट्टिज्ज अयंपिरो ॥२३॥

अन्वयार्थ — गोचरी के लिए गया हुआ साधु (असंसत्तं पलोइज्जा) किसी की तरफ आसक्ति पूर्वक न देखे (नाइदूरावलोयए) घर के अन्दर दूर तक लम्बी दृष्टि डालकर भी न देखे तथा (उप्फुल्लं) आँखें फाड़-फाड़कर टकटकी लगाकर (न) विनिज्झाए) देखे। यदि वहाँ भिक्षा न मिले तो (अयंपिरो) कुछ भी न बोलता हुआ अर्थात् दीन वचन न बोलता हुआ तथा क्रोध से बड़बड़ाहट नहीं करता हुआ (नियट्टिज्ज) वहाँ से वापिस लौट आवे॥२३।

अइभूमिं न गच्छेज्जा गोयरग्गगओ मुणी ।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ।२४॥

अन्वयार्थ — (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (मुणी) साधु (अइभूमिं) अति भूमि में अर्थात् गृहस्थ की मर्यादित भूमि में आगे उसकी आज्ञा के बिना (न गच्छेज्जा) न जावे किन्तु (कुलस्स) कुल की (भूमिं) भूमि को (जाणित्ता) जानकर (मियं भूमिं) जिस कुल का जैसा आचार हो वहाँ तक की परिमित भूमि में ही (परक्कमे) जावे, क्योंकि परिमित मर्यादा से आगे जाने पर दाता क्रोधित हो सकता है ॥२४॥

तत्थेव पडिलेहिज्जा भूमि भागं वियक्खणो ।
सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥२५॥

अन्वयार्थ — (वियक्खणो) भिक्षा के लिए गया हुआ विचक्षण साधु (तत्थेव) उस (भूमिभागं) मर्यादित भूमि की

(पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे अर्थात् उस भूमि को पूज-
कर खडा रहे। वहाँ खडा हुआ साधु (सिणाणस्स) स्नान-
घर की तरफ (य) और (वच्चस्स) पाखाने की तरफ
(सलोग) दृष्टि (परिवज्जए) न डाले ॥२५॥

भावार्थ — जहां खडे रहने से स्नानघर और पाखाना आदि दिखाई देते हों तो विचक्षण साधु ऐसे स्थान को छोडकर दूसरी जगह खडा हो जाय।

दगमट्टिय आयाणे, बीयाणि हरियाणि य ।
परिवज्जतो चिट्ठिज्जा, सव्विंदियसमाहिए ॥२६॥

अन्वयार्थ (सव्विंदियसमाहिए) सब इन्द्रियों को
वश में रखता हुआ समाधिवंत मुनि (दगमट्टिय आयाणे)
सचित्त जल और सचित्त मिट्टी युक्त जगह को (बीयाणि)
बीजो को (य) और (हरियाणि) हरित काय को (परि-
वज्जतो) वर्ज कर (चिट्ठिज्जा) यतना पूर्वक खडा रहे ॥२६।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयण ।
अकप्पिय न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्जा कप्पिय ॥२७॥

अन्वयार्थ – (तत्थ) वहाँ मर्यादित भूमि में (चिट्ठ-
माणस्स) खडे हुए (से) साधु को दाता (पाणभोयण)
आहार पानी (आहरे) देवे-बहरावे और यदि आहारादि
(कप्पिय) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे किन्तु
(अकप्पिय) अकल्पनीय आहारादि (न गिण्हिज्जा–न इच्छि-
ज्जा) ग्रहण न करे ॥२७।

आहरती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं ।
दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥२८॥

अन्वयार्थ — (आहरंती) आहार पानी देती हुई बाई (सिया) यदि कदाचित् (तत्थ) वहाँ (भोयण) आहार पानी को (परिसाडिज्ज) गिराती हुई लावे तो (दितिय) देने वाली उस बाई को साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नहीं कल्पता है ॥२८॥

समद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजमकरिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥२९॥

अन्वयार्थ — यदि (पाणाणि) प्राणियों को (बीयाणि) बीजों को (य) और (हरियाणि) हरी वनस्पति को (समद्दमाणी) पैरों आदि से कुचलती हुई बाई आहार पानी देवे तो (तारिसं) इस प्रकार (असंजमकरिं) साधु के लिए असंयतना करने वाली (नच्चा) जानकर साधु उसे (परिवज्जए) वर्ज दे अर्थात् न ले ।

साहट्टु निक्खिवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाणि य ।
तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥३०॥

ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाणभोयणं ।
दितियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥३१॥

अन्वयार्थ —(तहेव) इसी प्रकार (समणट्ठाए) साधु के लिए (सचित्तं) सचित्त वस्तु को (साहट्टु) अचित्त वस्तु के साथ मिलाकर (निक्खिवित्ताणं) सचित्त वस्तु पर आहार आदि को रखकर (य) और (संघट्टियाणि) संघट्टा करके तथा (उदगं) सचित्त पानी को (संपणुल्लिया) हिलाकर (ओगाहइत्ता) पानी में प्रवेश करके (चलइत्ता) चलके हुए

पानी को नाली आदि से निकाल करके (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे तो (दितिय) देती हुई उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न कप्पइ) नही कल्पता है ॥३०-३१॥

पुरेकम्मेण हत्थेण दव्वीए भायणेण वा ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥३२॥

अन्वयार्थ — (हत्थेण) ऐसा हाथ (दव्वीए) कुडछी-चमचा (वा) अथवा (भायणेण) बरतन आदि जिनको (पुरेकम्मेण) साधु को आहारादि देने के लिए पहले धोये हों, उनसे (दितिय) आहारादि देती हुई बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥३२॥

एव उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया उसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अजणे लोणे ॥३३॥

गेरुय वन्निय सेढिय, सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस कए य ।
उक्किट्ठमसमट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥३४॥

अन्वयार्थ — (एव) इसी प्रकार (उदउल्ले) सचित्त जल से गीले हाथो से (ससिणिद्धे) गीली रेखाओ सहित हाथो मे (ससरक्खे) सचित्त रज से भरे हुए (मट्टिया) सचित्त मिट्टी (उसे ऊसे-ओसे) खार (हरियाले) हरताल (हिंगुलए) हिंगुलू (मणोसिला) मैनसिल (अजणे) अजन (लोणे) सचित्त नमक (गेरुय) गेरु (वन्निय) पीली मिट्टी (सेढिय-सेडिय) सफेद खडिया मिट्टी (सोरट्ठिय) फिटकडी

(पिट्ठ) तत्काल पीसा हुआ आटा (कुक्कुस कए) तत्काल कूटे हुए धान के तुष (य) और (उक्किट्ठ) बड़े फल अर्थात् कोहले तरबूज आदि के टुकड़े (वेय) इन उपरान्त पदार्थों में से किसी भी पदार्थ से (ससट्ठे) हाथ भरे हुए हों अथवा (असंसट्ठ) उपरोक्त पदार्थों से भरे हुए हाथ आदि को सचित्त पानी से धोकर साधु को आहार पानी दे तो साधु न ले। (बोद्धव्वे) इस प्रकार की सारी बातें साधु को जान लेनी चाहिए ।।३३-३४।।

> असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
> दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ।।३५।।

अन्वयार्थ — (असंसट्ठेण) शाक आदि से अलिप्त बिना भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (दव्वीए) कुड़छी चमचा से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाणं) दिये जाने वाले आहारादि को मुनि (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् उस आहार को साधु न लेवे क्योंकि (जहिं) जहाँ (पच्छाकम्म) पश्चात्कर्म साधु को आहारादि देने के बाद सचित्त जल से हाथ आदि को धोने की क्रिया (भवे) लगने की सम्भावना हो ।।३५।।

> संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
> दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ।।३६।।

अन्वयार्थ — (संसट्ठेण) शाक आदि पदार्थों से भरे हुए (हत्थेण) हाथ से (य) या (दव्वीए) कुड़छी से (वा) अथवा (भायणेण) बरतन से (दिज्जमाणं) आहारादि दे (जं) और वह आहारादि (एसणियं) एषणीय निर्दोष (भवे)

हो तो (तत्थ) उस आहार को मुनि (पडिच्छिज्जा) ग्रहण करे ।।३६।

भावार्थ— मुनि को जो वस्तु दी जा रही हो, उसी से यदि हाथ, कुडछी आदि भरे हुए हो तो मुनि उस आहारादि को ग्रहण कर सकता है ।

दुण्ह तु भुजमाणाण, एगो तत्थ निमतए ।
दिज्जमाण न इच्छिज्जा, छद से पडिलेहए ।।३७।।

अन्वयार्थ - (तत्थ) गृहस्थ के घर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो उनमे से यदि (एगो) एक व्यक्ति (निमतए) निमत्रण करे अर्थात् आहारादि धामे (तु) तो (दिज्जमाण) दिये जाने वाले उस आहार की साधु (न इच्छिज्जा) इच्छा न करे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (से) उस निमत्रण न करने वाले व्यक्ति के (छद) अभिप्राय को (पडिलेहए) देखे ।। ७।।

दुण्ह तु भुजमाणाण, दो वि तत्थ निमतए ।
दिज्जमाण पडिच्छिज्जा, ज तत्थेसणिय भवे ।।३८।।

अन्वयार्थ — (तु) यदि (तत्थ) गृहस्थ के घर पर (दुण्ह) दो व्यक्ति (भुजमाणाण) भोजन कर रहे हो और (दो वि) वे दोनो (निमतए) निमत्रण करें और (ज) यदि (दिज्जमाण) दिया जाने वाला (तत्थ) वह आहार (एसणिय) एषणीय-निर्दोष (भवे) हो तो साधु (पडिच्छिज्जा) उसे ग्रहण कर सकता है ।।३८।

गुव्विणीय उवण्णत्थ, विविह पाणभोयण ।
भुजमाण विवज्जिज्जा, भुत्तसेस पडिच्छए ।।३६।।

अन्वयार्थ — (गुव्विणीए) गर्भवती स्त्री के लिए (उवगणत्थ) बना कर रखे हुए (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार पानी को यदि वह (भुञ्जमाण) खा रही हो, तो साधु (विवज्जिज्जा) उस आहारादि को वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (भुत्तसेस) उस गर्भवती के भोजन कर लेने के बाद, जो बचा हुआ हो तो (पडिच्छए) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३९॥

सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।
उट्ठिया वा निसीइज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए ॥४०॥

त भवे भत्तपाण तु संजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४१॥

अन्वयार्थ — (सिया) यदि कदाचित् (कालमासिणी) नजदीक प्रसव वाली (गुव्विणी) गर्भवती स्त्री (उट्ठिया वा) जो पहले से खड़ी हो किन्तु (समणट्ठाए) साधु को आहारादि देने के लिए (निसीइज्जा) बैठ (वा) अथवा (निसन्ना) पहले से बैठी हुई वह साधु के लिए (पुण) फिर (उट्ठए) खड़ी हो (त) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (संजयाण) साधुओं के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार ... (मे) मुझे (न) ... कल्पता है ...

[illegible]

अन्वयार्थ — (दारग) बालक को (वा) अथवा (कुमारिय) बालिका को (थणग पिज्जमाणी पिज्जमाणी य) स्तन पान कराती हुई चुघाती हुई बाई (त) बच्चे को (निक्खिवित्तु) नीचे रक्खे और बच्चा (रोयते) रोने लगे उस समय (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४२-४३॥

ज भवे भत्तपाण तु, कप्पाकप्पम्मि सकिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४४॥

अन्वयार्थ — (ज) जो (भत्तपाण) आहार पानी (कप्पाकप्पम्मि) कल्पनीय और अकल्पनीय की (सकीय) शका से युक्त हो (तु) तो साधु (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४४॥

दगवारेण पिहिय, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥

त च उब्भिदिआ दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४६॥

अन्वयार्थ — (दगवारेण) सचित्त जल के घडे से (नीसाए) चक्की से (वा) अथवा (पीढएण) चौकी या बाजोट से (वा) अथवा (लोढेण) पत्थर से (वि) अथवा

अन्वयार्थ — (गुव्विणीए) गर्भवती स्त्री के लिए (उवगणत्थ) बना कर रखे हुए (विविहं) अनेक प्रकार के (पाणभोयणं) आहार पानी को यदि वह (भुंजमाणं) खा रही हो, तो साधु (विवज्जिज्जा) उस आहारादि का वर्जन अर्थात् ग्रहण न करे किन्तु (भुत्तसेसं) उस गर्भवती के भोजन कर लेने के बाद जो बचा हुआ हो तो (पडिच्छए) उसे ग्रहण कर सकता है ॥३९॥

> सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।
> उट्ठिया वा निसीइज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए ॥४०॥
> तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
> दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४१॥

अन्वयार्थ — (सिया) यदि कदाचित् (कालमासिणी) नजदीक प्रसव वाली (गुव्विणी) गर्भवती स्त्री (उट्ठिया वा) जो पहले से खड़ी हो किन्तु (समणट्ठाए) साधु को आहारादि देने के लिए (निसीइज्जा) बैठे (वा) अथवा (निसन्ना) पहले से बैठी हुई वह साधु के लिए (पुण) फिर (उट्ठए) खड़ी हो (तं) तो (तं) वह (भत्तपाणं) आहार पानी (संजयाण) साधुओं के लिए (अकप्पियं) अकल्पनीय [illegible] होता है। इसलिए (दितियं) देने वाली इस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का आहार (मे) मुझे (न) नहीं (कप्पइ) कल्पता है ॥४०-४१॥

> थणगं पिज्जेमाणी दारगं वा कुमारियं ।
> तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाणभोयणं ॥४२॥
> तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
> दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४३॥

अन्वयार्थ — (दारग) बालक को (वा) अथवा (कुमारिय) बालिका को (थणग पिज्जमाणी पिज्जमाणी य) स्तन पान कराती हुई चुधाती हुई बाई (त) बच्चे को (निक्खिवित्तु) नीचे रक्खे और बच्चा (रोयते) रोने लगे उस समय (पाणभोयण) आहार पानी (आहरे) देवे (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय (भवे) होता है। इसलिए (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४२-४३॥

ज भवे भत्तपाण तु, कप्पाकप्पम्मि सकिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४४॥

अन्वयार्थ — (ज) जो (भत्तपाण) आहार पानी (कप्पाकप्पम्मि) कल्पनीय और अकल्पनीय की (सकीय) शका से युक्त हो (तु) तो साधु (दितिय) देने वाली बाई से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४४॥

दगवारेण पिहिय, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥

त च उब्भिदिया दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४६॥

अन्वयार्थ — (दगवारेण) सचित्त जल के घड़े से (नीसाए) चक्की से (वा) अथवा (पीढएण) चौकी या बाजोट से (वा) अथवा (लोढेण) पत्थर से (वि) अथवा

उसी तरह से (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार पानी का बरतन (पिहिय) ढका हुआ हो (त्ति) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छांदण लगी हुई हो (तं) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिंदिया उब्भिंदिउं) खोलकर (दिज्जा) आप स्वयं देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे तो (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नहीं (कप्पइ) कल्पता है ॥४५ ४६॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पगडं इमं ॥४७॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥४९॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं ॥५१॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५२॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा समणट्ठा पगडं इमं ॥५३॥

तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५४॥

अन्वयार्थ — (ज) जिस (असण) आहार (पाणग) पानी (वावि) अथवा (साइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय में साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुणट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचकों के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओं के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओं के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥ ४७-५४ ॥

उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहडं।
अज्झोयर पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

अन्वयार्थ — जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार में आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए बनाये जाने वाले आहार में साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणों से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड दे अर्थात् ग्रहण न करे। ५५॥

उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं ।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजए ॥५६॥

अन्वयार्थ — सन्देह हो जाने पर (संजए) साधु उस मे (से) उस आहारादि की (उग्गमं) उत्पत्ति के विषय में (पुच्छिज्जा) पूछे कि यह आहार (कस्सट्ठा) किसके लिए (वा) और (केण) किसने (कडं) तैयार किया है ? फिर (सुच्चा) गृहस्थ के मुख से उसकी उत्पत्ति को सुनकर वह (निस्संकियं) शंका रहित और शंकित आदि दोषों से रहित हो (अ) और (सुद्धं) निर्दोष हो तो साधु (पडि गाहिज्ज) ग्रहण करे, अन्यथा नहीं ॥५६॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा ॥५७॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५८॥

अन्वयार्थ —(असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा) अशन पान खादिम स्वादिम चारों प्रकार का आहार (पुप्फेसु) फूलों से (बीएसु) बीजों से (वा) अथवा (हरिएसु) हरी सीलोती से (उम्मीसं) मिश्रित (होज्ज) हो जाय तो अर्थात् परस्पर मिल जाय, ऐसा आहार पानी साधुओं के लिए अकल्पनीय है। 'तं भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥ ५७-५८ ॥

असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिंग पणगेसु वा ॥५९॥

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥६०॥

अन्वयार्थ — (ज) जिस (असणं) आहार (पाणग) पानी (वाचि) अथवा (साइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय मे साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुणट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओ के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥ ४७-५४ ॥

उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहड।
अज्झोयर पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

अन्वयार्थ — जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार मे आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए बनाये जाने वाले आहार मे साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणो से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड दे अर्थात् ग्रहण न करे। ५५॥

इसी-तरह के (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार पानी का बरतन (पिहिय) ढका हुआ हो (वि) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छानण लगी हुई हो (तव) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिदिआ-उब्भिदिउ) खोलकर (दिज्जा) आप स्वय देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे तो (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ। कल्पता है ॥४५ ४६॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पगड इमं ॥४७॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४८॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगड इम ॥४९॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५०॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगड इमं ॥५१॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५२॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा समणट्ठा पगड इमं ॥५३॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५४॥

अन्वयार्थ — (ज) जिस (असण) आहार (पाणग) पानी (वावि) अथवा (साइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय मे साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुणट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओ के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है । इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥ ४७-५४ ॥

उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहड ।
अज्झोयर पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

अन्वयार्थ — जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार मे आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए बनाये जाने वाले आहार मे साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणो से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड दे अर्थात् ग्रहण न करे । ५५॥

इसी-तरह से (केणइ) किसी दूसरे पदार्थ से आहार पानी का बरतन (पिहिय) ढका हुआ हो (वि) अथवा (लेवेण) मिट्टी आदि के लेप से (सिलेसेण) अथवा मोम लाख आदि किसी चिकने पदार्थ से सील या छानण लगी हुई हो (तत्र) उसे यदि (समणट्ठाए) साधु के लिए (उब्भिदिआ उब्भिदिउ) खोलकर (दिज्जा) आप स्वय देवे (व) अथवा (दावए) दूसरे से दिलावे तो (दितिय) देने वाली उस बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहार पानी (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥४५ ४६॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, दाणट्ठा पगड इम ॥४७॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४८॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, पुण्णट्ठा पगड इम ॥४९॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५०॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा, वणिमट्ठा पगड इमं ॥५१॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५२॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
ज जाणिज्ज सुणिज्जा वा समणट्ठा पगडं इमं ॥५३॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५४॥

अन्वयार्थ— (ज) जिस (असण) आहार (पाणग) पानी (वावि) अथवा (साइम) खादिम मेवा (साइम) स्वादिम लौंग, इलायची आदि के विषय मे साधु (जाणिज्जा-जाणेज्ज) इस प्रकार जान ले (वा) अथवा (सुणिज्जा-सुणेज्जा) किसी से सुन ले कि (इम) उपरोक्त आहारादि (दाणट्ठा) दान के लिए (पुणट्ठा) पुण्य के लिए (वणिमट्ठा) याचको के लिए अथवा (समणट्ठा) बौद्ध आदि अन्य मतावलम्बी भिक्षुओ के लिए (पगड) बनाया हुआ है (तु) तो (त) वह (भत्तपाण) आहार पानी (सजयाण) साधुओ के लिए (अकप्पिय) अकल्पनीय है। इसलिए साधु (दितिय) दाता से (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझ (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ॥ ४७-५४ ॥

उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहड।
अज्झोयर पामिच्चं, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

अन्वयार्थ— जो आहारादि (उद्देसिय) साधु के लिए बनाया हुआ हो (कीयगड) साधु के लिए मोल लिया हुआ हो (पूइकम्म) निर्दोष आहार में आधाकर्मी आहार का सयोग हो गया हो (च) और (आहड) साधु के लिए सामने लाया हुआ हो (अज्झोयर) अपने लिए बनाये जाने वाले आहार में साधु के निमित्त से और डाला हुआ हो (पामिच्च) साधु के लिए उधार लिया हुआ हो और (मीसजाय) अपने लिए और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार हो तो, इन दूषणो से दूषित आहार को साधु (विवज्जए) छोड़ दे अर्थात् ग्रहण न करे। ५५॥

उग्गम से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कड ।
सुच्चा निस्सकिय सुद्ध, पडिगाहिज्ज सजए ॥५६॥

अन्वयार्थ — स देह हो जाने पर (सजए) साधु दाता से (से) उस आहारादि की (उग्गम) उत्पत्ति के विषय मे (पुच्छिज्जा) पूछे कि यह आहार (कस्सट्ठा) किसके लिए (वा) और (केण) किसने (कड) तैयार किया है ? फिर (सुच्चा) गृहस्थ के मुख से उसकी उत्पत्ति को सुनकर यदि वह (निस्सकिय) शका रहित औद्देशिक आदि दोषों से रहित हो (अ) और (सुद्ध) निर्दोष हो तो साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे, अन्यथा नही ॥५६॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा ।
पुप्फेसु होज्ज उम्मीस, बीएसु हरिएसु वा ॥५७॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥५८॥

अन्वयार्थ —(असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशन पान खादिम स्वादिम चारो प्रकार का आहार (पुप्फेसु) फूलो से (बीएसु) बीजो से (वा) अथवा (हरिएसु) लीलोती से (उम्मीस) मिश्रित (होज्ज) हो जाय तो परस्पर मिल जाय, ऐसा आहार पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत है ॥ ५७-५८ ॥

असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा ।
उदगम्मि होज्ज निक्खित्त, उत्तिग पणगेसु वा ॥५९॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६०॥

अन्वयार्थ – (असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (उदगम्मि) सचित्त जल के ऊपर (वा) अथवा (उतिंग पणगेसु) चीटियो के बिल पर या लीलन फूलन पर (निक्खित्त) रखा हुआ हो तो ऐसा आहार पानी साधुओ के लिए अकल्पनीय है। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥५९-६०॥

> असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
> तेउम्मि ज्ज निक्खित्त, त च सघट्टिया दए ॥६१॥
> त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
> दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६२॥

अन्वयार्थ – (असण पाणग वावि खाइम तहा साइम) अशनादि चार प्रकार का आहार यदि (तेउम्मि-अगणिम्मि) अग्नि के ऊपर (निक्खित्त) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) अथवा (त) अग्नि के साथ (सघट्टिया) सघट्टा हो रहा हो ऐसा अकल्पनीय आहारादि (दए) दे तो साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥६१-६२॥

एव उस्सक्किया ओसक्किया उज्जालिया पज्जालिया निव्वाविया, उस्सिचिया निस्सिचिया ओवत्तिया ओयारिया दए ॥६३॥

> त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय।
> दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६४॥

अन्वयार्थ — (एव) जिस प्रकार अग्नि से सघट्टा हो रहा है ऐसे आहारादि को मुनि नही लेते उसी प्रकार (उस्सक्किया उस्सिक्किया) अग्नि में इन्धन आगे सरका कर (ओसक्किया) अधिक इन्धन को अग्नि से बाहर निकाल

कर (उज्जालिया) बुझी हुई अग्नि को फूक आदि से सिलगा कर (पज्जालिया) अग्नि को अधिक प्रज्वलित करके (निव्वाविया) अग्नि को बुझाकर (उस्सिचिया) अग्नि पर पकते हुए आहार मे से कुछ बाहर निकाल कर (निस्सिचिया) उफनते हुए दूध आदि मे पानी का छिडका देकर (ओवत्तिया-उव्वत्तिया उवत्तिया) अग्नि पर रहे हुए आहारादि को दूसरे बरतन में निकालकर (ओयारिया) अग्नि पर रहे हुए बरतन को नीचे उतारकर (दए) फिर आहार पानी दे तो ऐसे अकल्पनीय आहार पानी को साधु ग्रहण न करे। 'त भवे' इस गाथा का शब्दार्थ पूर्ववत् है ।६३-६४।

भावार्थ — 'साधु को आहारादि देने में समय लगेगा' इतनी देर मे अग्नि ठंडी न पड जाय अथवा अग्नि पर रहा हुआ आहारादि जल न जाय, ऐसा विचार कर यदि दाता अग्नि की उपरोक्त क्रिया करके आहारादि दे तो साधु उसे ग्रहण न करे।

> हुज्ज कट्ठ सिल वावि, इट्टाल वावि एगया।
> ठविय सकमट्ठाए, त च होज्ज चलाचल ॥६५॥
> न तेण भिक्खू गच्छिज्जा, दिट्ठो तत्थ असजमो।
> गभीर झुसिर चेव, सव्विदिय समाहिए।६६॥

अन्वयार्थ — (एगया) कभी वर्षा आदि के समय (संकमट्ठाए) आने जाने के लिए (कट्ठ) काष्ठ (वावि) अथवा (सिल) शिला (वावि) अथवा (इट्टाल) ईंट का टुकडा (ठविय) रखा हुआ (हुज्ज) हो (च) और (त) यदि वह (चलाचल) अस्थिर-डगमगाता (होज्ज) हो तो (तेण) उस मार्ग से तथा जो मार्ग (गभीर) गहरा ऊडा होने से प्रकाश रहित हो और (झुसिर) जो मार्ग पोला हो

उस माग से (सव्विदिय समाहिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (भिक्खू) साधु (न) नही (गच्छेज्जा) जावे क्योंकि (तत्थ) वहाँ पर गमन करने से सर्वज्ञ प्रभु ने (असजमो) असयम (दिट्ठो) देखा है ॥६५-६६॥

> निस्सेणि फलग पीढ, उस्सवित्ताणमारुहे ।
> मच कील च पासाय समणट्ठाए व दावए ॥६७॥
>
> दुरूहमाणी पवडिज्जा, हत्थ पाय व लूसए ।
> पुढवि जीवे वि हिंसिज्जा, जे य तन्निस्सिया जगे ॥६८॥
>
> एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
> तम्हा मालोहड भिक्ख, न पडिगिण्हति सजया ॥६९॥

अन्वयार्थ — यदि (दावए) दान देने वाली स्त्री (समणट्ठाए) साधु के लिए (निस्सेणि) निसरणी (फलग) पाटिया (पीढ) चौकी (मच) खाट (व) और (कील) कीले को (उस्सवित्ताण) ऊचा खडा करके (पासाय) प्रासाद-दूसरी मजिल पर (आरुहे) चढे तो (दुरूहमाणी) इस प्रकार कष्ट से चलती हुई वह (पवडिज्जा-पवडेज्जा पडिवज्जा) शायद गिर पडे (व) और (हत्थ) उसका हाथ (पाय) पैर आदि (लूसए) टूट जाय तथा (पुढविजीवे) पृथ्वीकाय के जीवो की भी (हिंसिज्जा) हिंसा होगी (य) और (जे) जो (तन्निस्सिया) उस पृथ्वी की नेसराय मे रहे हुए (जगे वि) त्रस जीवो की भी हिंसा होगी । (तम्हा) इसलिए (एयारिसे) ऐसे पूर्वोक्त प्रकार के (महादोसे) महादोषो का (जाणिऊण) जानकर (सजया) शुद्ध सयम का पालन करने वाले (महेसिणो) महर्षि लोग (मालोहड) ऊपर के

जिनमे खाने योग्य अंश (अप्पे) थोडा (सिया) हो और (बहु उज्झिय धम्मिय धम्मिए) फेंक देने योग्य अश अधिक हो, ऐसे फल आदि (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का आहारादि (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ।७३-७४।

तहेवुच्चावय पाणं, अदुवा वार धोयण ।
संसेइम चाउलोदग अहुणाधोय विवज्जए ॥७५॥

अन्वयार्थ — (तहेव) जिस प्रकार आहार के विषय मे बतलाया गया है उसी प्रकार (पाण) पानी के विषय मे आगे बताया जाता है (उच्चावय) उच्च अर्थात् अच्छ वर्णादि से युक्त दाख आदि का धोवन और अवच सुदर वर्ण से रहित मेथी, केर आदि का धोवन (अदुवा) अथवा (वार धोयण) गुड के घडे का धोवन (ससेइम) आटे की कठौती का धोवन (चाउलोदग) चावलो का धोवन, ये सब धोवन यदि (अहुणा धोय) तुरन्त के धोये हुए हो तो साधु (विवज्जए) उन्हें छोड़ देवे अर्थात् ग्रहण न करे ॥७५॥

ज जाणेज्ज चिराधोय, मईए दसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, ज च निस्सकिय भवे ॥७६॥

अन्वयार्थ — (मईए) अपनी बुद्धि से (वा) अथवा (दसणेण) देखने से (पडिपुच्छिऊण) गृहस्थ से पूछकर (वा) अथवा (सुच्चा) सुनकर (ज) जो धोवन (चिराधाय) बहुत काल का धोया हुआ है ऐसा (जाणेज्ज) जाने (च) और (ज) जो (निस्सकिय) शका रहित (भवे) हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है ।७६॥

अजीव परिणय नच्चा, पडिगाहिज्जि सजए ।
अह सकिय भविज्जा आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

अन्वयार्थ — (अजीव) जल को जीव रहित और (परिणय) शस्त्र परिणत (नच्चा) जानकर (सजए) साधु (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे (अह) यदि वह (सकिय) इससे प्यास बुझेगी या नही इस प्रकार की शका से युक्त (भविज्जा) हो तो उसे (आसाइत्ताण) चख करके (रोयए) निर्णय करे ॥७७॥

थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे ।
मा मे अच्चबिल पूय, नाल तिण्ह विणित्तए ॥७८॥

अन्वयार्थ — धोवन आदि को चख कर निणय करने के लिए साधु दाता से कहे कि (आसायणट्ठाए) चखने के लिए (थोव) थोडा सा धोवन (मे) मेरे (हत्थगम्मि) हाथ मे (दलाहि) दो ।— क्योंकि (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टा (पूय-पूइ) बिगडा हुआ और (तिण्ह) प्यास को (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमर्थ धोवन (मे) मेरे लिए (मा) उपयोगी नही होगा ।७८।

त च अच्चबिल पूय नाल तिण्ह विणित्तए ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥७९॥

अन्वयार्थ — (त) उस (अच्चबिल) अत्यन्त खट्टे (पूय पूइ) बिगडे हुए (च) और (तिण्ह) प्यास (विणित्तए) बुझाने मे (नाल) असमथ ऐसे धोवन को (दितिय) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिस) इस प्रकार का धोवन (मे) मुझे (न) नही (कप्पइ) कल्पता है ।७९॥

त च होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छिय ।
त अप्पणा न पिवे, नो वि अन्नस्स दावए ॥८०॥

अन्वयार्थ — यदि कदाचित् (*अकामेण-अकामेण*) विना इच्छा से (च) अथवा (विमणेण) विना मन से ध्यान न रहने के कारण (पडिच्छिय होज्ज-होज्जा-हुज्जा) उपरोक्त प्रकार का घोवन ग्रहण कर लिया हो तो साधु (त) उस घोवन को (न) न तो (अप्पणा) आप स्वय (पिवे) पिवे और (नो वि) न (अन्नस्स) दूसरो को (दावए) पिलावे ॥८०॥

एगतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया ।
जय परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८१॥

अन्वयार्थ —(*एगत*) *एकान्त स्थान मे* (*अवक्कमित्ता*) जाकर (अचित्त) एकेन्द्रियादि प्राणी रहित स्थान का (पडिलेहिया) पूजकर उस घोवन को (जय) यतना से (परिट्ठविज्जा) परठ दे। (परिट्ठप्प) परिठव करके तीन बार वोसिरे वोसिरे कहे फिर वापिस आकर (पडिक्कमे) इरिया-*वहिया का प्रतिक्रमण करे ॥८१॥*

अथवा अन्य किसी कारण से (परिभोत्तु अ-परिभुत्तु अ-परिभुजिउ) वहीं पर आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो वहाँ (फासुय) जीव रहित (कुट्ठग) कोठे आदि को (पडि-लेहित्ताण) पडिलेहणा करके (य) और (अणुन्नवित्तु) गृहस्थ की आज्ञा मागकर (तत्थ) वहाँ (भित्तिमूल) दीवार की आड मे (वा) अथवा (पडिच्छन्नम्मि) ऊपर से छाये हुए स्थान मे (हत्थग) पूजनी से हाथ आदि को (सपमज्जित्ता) पूजकर (सवुड) उपयोग पूर्वक (भुजिज्ज) आहार करे ॥८२-८३॥

तत्थ से भुजमाणस्स, अट्ठिय कटओ सिया ।
तणकट्ठसक्कर वावि, अन्न वावि तहाविह ॥८४॥

त उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए ।
हत्थेण त गहेऊण, एगतमवक्कमे ॥८५॥

एगतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया ।
जय परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥८६॥

अन्वयार्थ — (तत्थ) वहाँ कोठे आदि मे (भुजमाण-स्स) आहार करते हुए (से) साधु के आहार मे (सिया) यदि कदाचित् (अट्ठिय) बीज गुठली (कटओ) काटा (तण) तिनका (कट्ठ) काठ का टुकडा (वावि) अथवा (सक्कर) छोटा ककर तथा (अन्न वावि) और भी (तहाविह) इसी प्रकार का कोई पदार्थ आ जाय तो (त) उसे (उक्खिवित्तु) निकाल कर (न निक्खिवे) इधर उधर न फेंके तथा (आस-एण) मुख मे भी (न छड्डए) न-फेंके-न थूके किन्तु (हत्थेण) हाथ से (त) उसे (गहेऊण) ग्रहण करके (एग त) एकात

स्थान मे (अवक्कमे) जावे और (एग त) एकान्त स्थान म (अवक्कमित्ता) जाकर (अचित्त) जीव रहित अचित्त स्थान की (पडिलेहिया) पडिलेहणा करके (जय) यतना पूर्वक उसे (परिट्ठविज्जा) परठ दे और (परिठप्प) परिठव करके (पडिक्कमे) वापस लौटकर प्रतिक्रमण करे अर्थात् इरियावहिया का ध्यान करे ॥८४-८५-८६।

> सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुय।
> सपिडपायमागम्म, उडुग्र पडिलेहिया ॥८७।
>
> विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणो ।
> इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे । ८८॥

अन्वयार्थ — (सिया) जो (भिक्खू) साधु (सिज्ज) अपने स्थान मे ही (आगम्म) आकर (भुत्तुय-भोत्तुय) आहार करना (इच्छिज्जा) चाहे तो (सपिडपाय) वह उस शुद्ध भिक्षा को लेकर (आगम्म) अपने स्थान मे आवे (य) और (विणएण-विणएण) विनयपूर्वक (पविसित्ता) स्थानक मे प्रवेश करके (उडुग) भोजन करने के स्थान को (पडिलेहिया) अच्छी तरह देखे (य) और (गुरुणो) गुरु के (सगासे) पास (आगओ) आकर (मुणी) मुनि (इरियावहिय) इरियावहिया का पाठ (आयाय) पढकर (पडिक्कमे) कायोत्सर्ग करे ॥८७ ८८॥

> आभोइत्ताण नीसेसं, अइयार जहक्कमं ।
> गमणागमणे चेव, भत्तपाणे य सजए ॥८६॥
>
> उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
> आलोए गुरुसगासे, ज जहा गहिय भवे ॥६०॥

अन्वयार्थ — (मजए) कायोत्सर्ग करते समय मुनि (गमणागमणे) जाने आने में (चेव) और (भत्तपाणे) आहार पानी के ग्रहण करने में लगे हुए (नीसेस) सब (अइयार) अतिचारों को (य) तथा (ज) जो आहार पानी (जहा) जिस प्रकार से (गहियं) ग्रहण किया (भवे) हो उसे (जह-क्कम) यथाक्रम से (आभोइत्ताण-आभोएत्ताण) उपयोग पूर्वक चिन्तवन करके (उज्जुप्पन्नो) सरल बुद्धि वाला (अणुव्विग्गो) उद्वेग रहित वह मुनि (अव्वक्खित्तेण) एकाग्र (चेयसा) चित्त से (गुरुसगासे) गुरु के पास (आलोए) आलोचना करे ॥८९-९०॥

न सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व ज कडं ।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्टो चितए इम ॥९१॥

अन्वयार्थ (ज) जो अतिचार (पुव्वि) पहले (व) तथा (तच्छा) पीछे (कड) लगा है उसकी (सम्म) अच्छी तरह से क्रम पूर्वक (आलोइय) आलोचना (न हुज्जा) न हुई हो तो (तस्स) उस अतिचार की (पुणो) फिर से (पडिक्कमे) आलोचना करे और (वोसट्टो) कायोत्सर्ग मे रहा हुआ साधु (इम) आगे की गाथा मे कहे गये अर्थ का (चितए) चिन्तवन करे ॥९१॥

भावार्थ — जो अतिचार पहले लगा हो उसकी पहले आलोचना करनी चाहिए और पीछे लगे हुए अतिचार की पीछे आलोचना करनी चाहिए, किन्तु पहले की पीछे और पीछे की पहले आलोचना न करनी चाहिए ।

अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहण हेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥९२॥

नमकीन चाहे कैसा भी हो किन्तु (संजए) साधु उस आहार को (महुघय व) घी शक्कर को तरह प्रसन्नता पूर्वक (भुंजिज्ज) खावे ॥६७॥

अरस विरस वावि, सूइय वा असूइय ।
उल्लं वा जइ वा सुक्क, मथु कुम्मास भोयण ॥६८॥

उप्पण्ण नाइ हीलिज्जा, अप्प वा वहु फासुय ।
मुहालद्ध मुहाजीवी, भुंजिज्जा दोसविज्जय ।६६।

अन्वयार्थ — (उप्पण्ण) शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ आहार (जइ) चाहे (अरस) रस रहित हो (वावि) अथवा (विरस) विरस पुराने चांवल एव पुराने धान की बनी हुई रोटी आदि हो (सूइय) वघार छोंक दिया हुआ शाक हो (वा) अथवा (असूइय) वघार रहित हो (उल्ल) गीला हो (वा) अथवा (सुक्क) शुष्क भुने हुए चने आदि हो (वा) अथवा (मथु) वोर का चून या कुलथी का आहार हो अथवा (कुम्मास भोयण) उडद के वाकले हों (अप्प) सरस आहार थोडा हो (वा) अथवा (वहु) नीरस आहार वहुत हो अर्थात् चाहे कैसा भी आहार हो साधु (नाइ हीलिज्जा) उस आहार की अथवा दाता की अव हेलना-निन्दा न करे किन्तु (मुहाजीवी) नि स्पृहभाव से केवल सयम यात्रा का निर्वाह करने के लिए भिक्षा लेने वाला मुनि (मुहालद्ध) दाता द्वारा नि स्वार्थ भाव से दिये हुए (फासुय) उस प्रासुक एवं निर्दोष आहार को (दोस वज्जिय) सयोजनादि दोषों को टालकर (भुंजिज्जा) सम- भाव पूर्वक भोगवे ॥६८ ६६॥

दुल्लहा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजोवो दो वि गच्छंति सुग्गइ । १००।।त्ति वेमि।।

अन्वयार्थ — (मुहादाई) प्रत्युपकार की आशा न रखकर नि स्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले दाता (उ-हु) निश्चय ही (दुल्लहा दुल्लहाओ) दुलभ हैं और इसी तरह (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव नि स्पृह भाव से शुद्ध भिक्षा लेकर सयम यात्रा का निर्वाह करने वाले भिक्षु (वि) भी (दुल्लहा) दुलभ हैं। (मुहादाई) नि स्वाथ भाव से दान देने वाले दाता और (मुहाजीवी) निरपेक्ष एव नि स्पृह भाव से दान लेने वाले भिक्षु (दो वि) दोनो ही (सुग्गइ) सुगति मे (गच्छंति) जाते है ॥१००॥ (त्ति वेमि) पूर्ववत् ।

पिण्डैषणा नामक पाचवे अध्ययन का दूसरा उद्देशा

पडिग्गह सलिहित्ताण, लेवमायाए सजए ।
दुगध वा सुगध वा, सव्व भुजे न छड्डए ॥१॥

अन्वयार्थ — (सजए) साधु (पडिग्गह) पात्र में लगे हुए (लेवमायाए-लेवमायाइ-य) लेप मात्र को (वा) चाहे वह (दुगध) अमनोज्ञ गध वाला हो (वा) अथवा (सुगध) सुरभि गन्ध वाला हो (सव्व) उस सब को (सलिहित्ताण) अगुली से पोछकर (भुजे) खा जाय किन्तु (न छड्डए) कुछ भी न छोडे ॥१॥

सेज्जा निसीहियाए, समावन्नो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भुच्चाणं, जइ तेण न सथरे ॥२॥

अन्वयार्थ — (भिक्खू) साधु (काले) भिक्षा का समय (सइ) होने पर (चरे) गोचरी के लिए जावे और (पुरिसकारियं) भिक्षा के लिए घूमने रूप पुरुषार्थ (कुज्जा) करे (अलाभुत्ति) यदि भिक्षा का लाभ न हो तो फिर (न सोइज्जा) शोक न करे किन्तु (तवुत्ति) आज सहज ही में मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप होगा, ऐसा विचार कर (अहियासए) क्षुधा परीषह को समभाव पूर्वक सहन करे।।६।।

तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुयं न गच्छिज्जा जयमेव परक्कमे ।।७।।

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (उच्चावया) उत्तम जाति के हंसादि पक्षी और नीच-जाति के कौए आदि (पाणा) प्राणी यदि (भत्तट्ठाए) चुगा पानी के लिए किसी स्थान पर (समागया) इकट्ठे हुए हों तो साधु (तं उज्जुयं) उन प्राणियों के सामने (न गच्छिज्जा) न जावे किन्तु (जयमेव) यतना पूर्वक अन्य मार्ग से (परक्कमे) जावे जिससे उन प्राणियों के चुग्गा पानी में अन्तराय न पड़े ।।७।।

गोयरग्ग पविट्ठो य, न निसीइज्ज कत्थई ।
कहं च न पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए ।।८।।

अन्वयार्थ — (गोयरग्गपविट्ठो य) गोचरी के लिए गया हुआ (संजए) साधु (कत्थई) कहीं पर भी (न) न (निसीइज्जा) बैठे (च) और (चिट्ठित्ताण व) खड़ा रहकर भी (कहं) कथा वार्ता (न) न (पबंधिज्जा) कहे ।।८।।

अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वावि संजए ।
अवलम्बिया न चिट्ठिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ।।९।।

अन्वयार्थ — (गोयरग्गगओ) गोचरी के लिए गया हुआ (सजए) छ काय के जीवो की रक्षा करने वाला सयती (मुणी) मुनि (अग्गल) आगल-भोगल को (फलिह) फलक अर्थात् दोनो किवाडो को रोक रखने वाले काठ को, होडा को (दार) दरवाजे को (वावि) अथवा (कवाड) किवाड को (अवलबिया) पकडकर या सहारा लेकर (न चिट्ठिज्जा) खडा न रहे क्योकि इस प्रकार खडे रहने से आत्मविराधना एव सयमविराधना होने की सभावना रहती है ॥९॥

समण माहण वावि, किविण वा वणीमग ।
उव सकमत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥१०॥

तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे ।
एगतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज सजए ॥११॥

अन्वयार्थ —(समण) श्रमण (वावि) अथवा (माहण) ब्राह्मण (किविण) कृपण (वा) अथवा (वणीमग) भिखारी आदि (भत्तट्ठापाणट्ठाए) अन्न पानी के लिए (उवसकमत्त) गृहस्थ के द्वार पर खडे हो तो (सजए) सयमी साधु (त) उनको (अइक्कमित्तु) लाघकर (न पविसे) गृहस्थ के घर मे न जावे और (चक्खुगोयरे) जहाँ पर उस दाता की और भिखारियो की दृष्टि पडती हो वहाँ पर भी (न चिट्ठे) खडा न रहे किन्तु (सजए) वह सयती साधु (एगत) एकान्त स्थान मे जहा पर उनकी दृष्टि न पडती हो (तत्थ) वहाँ (अवक्कमित्ता) जाकर (चिट्ठिज्ज) यतना पूर्वक खडा रहे ॥१०-११॥

वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा ।
अप्पत्तिय सिया हुज्जा, लहुत्त पवयणस्स वा ॥१२॥

अन्वयार्थ - उन्हे उल्लघन करके जाने से या उनके सामने खडे रहने से (सिया) शायद (तस्स) उस (वणीमगस्स) याचक को (वा) अथवा (दायगस्स) दाता को (वा) अथवा (उभयस्स) दाता और याचक दोनो को (अप्पत्तिय) अप्रीति-द्वेष उत्पन्न होगा (वा) और (पवयणस्स) प्रवचन की-जिनशासन की (लहुत) लघुता (हुज्जा) होगी, अत उन्हे उल्लघन करके गृहस्थ के घर मे जाना साधु का कल्प नही है ॥१२॥

पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए ।
उवसकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥१३॥

अन्वयार्थ — (दिन्ने) उन याचको को भिक्षा देने पर (वा) अथवा (पडिसेहिए) दाता के निषेध कर देने पर (तम्मि) जब वे याचक (तओ) गृहस्थ के घर से (नियत्तिए) लौटकर चले जाय तब (सजए) साधु (भत्तट्ठापाणट्ठाए व) आहार पानी के लिए वहाँ (उवसकमिज्ज) जावे ॥१३॥

उप्पल पउम वावि, कुमुय वा मगदतिय ।
अन्न वा पुप्फसच्चित्त, त च सलुचिया दए ॥१४॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥१५॥

उप्पल पउम वावि, कुमुय वा मगदतिय ।
अन्न वा पुप्फसच्चित्त, त च समद्दिया दए ॥१६॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥१७॥

अन्वयार्थ—(उप्पल) नीलोत्पल नीला कमल (वावि) अथवा (पउम) पद्म नाल कमल (कुमुय) चन्द्रविकासी सफेद कमल (वा) अथवा (मगदतिय) मालती-मोगरे का फूल (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार का दूसरा कोई (पुप्फ) फूल (सच्चित्त) जो सचित्त हो (त) उसको (मलुचिया) छेदन भेदन करके (वा) अथवा (समद्दिया) पैरो आदि से कुचलकर अथवा सघट्टा करके (दए) आहार पानी दे तो साधु दाता से कहे कि ऐसा आहार पानी मुझे नही कल्पता है। 'त भवे' का शब्दार्थ पूर्ववत् है ॥१४-१५-१६-१७॥

सालुय वा विरालिय, कुमुय उप्पलनालिय ।
मुणालिय सासव नालिय, उच्छुखड अनिव्वुड ॥१८॥

तरुणग वा पवाल, रुक्खस्स तणगस्स वा ।
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमग परिवज्जए ॥१९॥

अन्वयार्थ— (सालुय) कमल का मूल (विरालिय) पलास का कन्द (कुमुय) चन्द्रविकासी सफद कमल (उप्प-लनालिय) कमल नाल (मुणालिय) कमल तन्तु (सासव-नालिय) सरसो की भाजी या नाल (वा) अथवा (उच्छु-खड) ईख के टुकडे गडेरी ये सब पदाथ यदि (अनिव्वुड) शस्त्र परिणत न हो तो साधु ग्रहण न करे तथा (रुक्खस्स) वृक्ष के (वा) अथवा (तणगस्स) तृण के (अन्नस्स वावि) अथवा इसी प्रकार की दूसरी किसी भी (हरियस्स) हरित काय के (तरुणग) कच्चे पत्ते (वा) अथवा (पवाल)

कच्ची कोंपल आदि (आमग) जो सचित्त हो तो उन्हें (परिवज्जए) साधु ग्रहण न करे ॥१८-१६॥

तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥२०॥

अन्वयार्थ — (तरुणिय) जिसके बीज नहीं पके हैं ऐसी (छिवाडिं) मूग आदि की फली जो (आमियं) कच्ची हो (वा) अथवा (सइ) एक बार की (भज्जियं) भुनी हुई हो जिसमें पक्वापक्व-मिश्र की शंका हो, ऐसी फली यदि कोई साधु को देने लगे तो (दितियं) देने वाली बाई से साधु (पडियाइक्खे) कहे कि (तारिसं) इस प्रकार का पदार्थ (मे) मुझे (न) नहीं (कप्पइ) कल्पता है ।२०॥

तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुयं कासवनालियं ।
तिलपप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए ॥२१॥

अन्वयार्थ —(तहा) इसी प्रकार (अणुस्सिन्नं) अग्नि आदि से विना पकाया हुआ कोल) कोल-बोरकूट (वेलुयं) वंश करेला (कासवनालियं) श्रीपर्णी का फल (तिलपप्पडगं) तिल पापडी (नीमं) नीम का फल-नींबोली ये सब यदि (आमगं) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हें ग्रहण न करे ॥२१॥

तहेव चाउलं पिट्ठं, वियडं वा तत्तऽनिव्वुडं ।
तिल पिट्ठ पूइपिन्नागं, आमगं परिवज्जए ॥२२॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (चाउलं) चावलों का तथा गेहूं आदि का (पिट्ठं) तत्काल का पीसा हुआ आटा (वा) अथवा (तत्तऽनिव्वुडं) पहले गरम किया हुआ

किन्तु मर्यादा उपरात हो जाने के कारण ठडा होकर जो सचित्त हो गया है अथवा मिश्रित एव अपक्व (वियड) जल (तिलपिट्ठ) तिलकूटा (पूइपिन्नाग) सरसो की खल ये सब यदि (आमग) सचित्त हो तो (परिवज्जए) साधु इन्हे ग्रहण न करे ॥२२।

कविट्ठ माउलिंग च, मूलग मूलगत्तिय ।
आम असत्थपरिणय, मणसा वि न पत्थए ।२३॥

अन्वयार्थ — (कविट्ठ) कविठ फल (माउलिंग) मातुलिङ्ग-बिजौरा (मूलग) मूला (च) और (मूलगत्तिय) मूले के टुकडे—ये सब यदि (आम) सचित्त हो (असत्थ-परिणय) सम्यक् प्रकार से शस्त्र से परिणत न हुए हो तो साधु इन पदार्थों की (मणसा वि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे ॥२३॥

तहेव फलमथूणि, वीयमथूणि जाणिया ।
विहेलग पियाल च, आमग परिवज्जए ॥२४॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (फलमथूणि) बोर आदि फलो का चूर्ण (वीयमथूणि) बीजो का चूर्ण (विहेलग) बहेडा (च) और (पियाल) रायण का फल इन सबको (आमग) सचित्त (जाणिया) जानकर साधु इन्हे (परिवज्जए) वर्जे अर्थात् ग्रहण न करे ॥२४॥

समुयाण चरे भिक्खू, कुलमुच्चावय सया ।
नीय कुलमइक्कम्म, ऊसढ नाभिधारए ॥२५॥

अन्वयार्थ — (भिक्खू) साधु (सया) हमेशा (उच्चा-वय) ऊच और नीच अर्थात् धनवान् और गरीब (कुल)

कुल घर मे (समुयाण) सामुदानिक रूप से (चरे) गोचरी जावे किन्तु (नीय) गरीब (कुल) कुल घर को (अइक्कम्म) लांघ कर (ऊसढ) धनवान् के घर पर (नाभिधारए) न जावे ॥२५॥

भावार्थ—श्रीमन्त हो या गरीब हो किन्तु साधु उन दोनों को समान दृष्टि से देखे और समान भाव से प्रत्येक प्रतीति वार कुल म गोचरी के लिए जावे ।

> अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीइज्ज पण्डिए ।
> अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायण्णे एसणारए ॥२६॥

अन्वयार्थ — (मायण्णे) आहार पानी की मात्रा को जानने वाला (एसणारए) आहार की शुद्धि में तत्पर (पंडिए) बुद्धिमान् साधु (भोयणम्मि) भोजन मे (अमुच्छियो) गृद्धि भाव न रखता हुआ तथा (अदीणो) दीनता न दिखलाता हुआ (वित्ति) गोचरी की (एसिज्जा) गवेषणा करे, यदि ऐसा करते हुए कदाचित् भिक्षा न मिले तो (न विसिइज्ज न विसीएज्ज) खेद नही करे ॥२६॥

> बहु परघरे अत्थि, विविहं खाइमं साइमं ।
> न तत्थ पण्डिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो न वा ॥२७॥

अन्वयार्थ — (परघरे) गृहस्थ के घर मे (खाइमं) खादिम, बादाम, पिस्ता आदि मेवा और (साइमं) स्वादिम लौंग, इलायची आदि (विविहं) अनेक प्रकार के (बहु) बहुत से (अत्थि) पदार्थ होते हैं यदि गृहस्थ साधु को वे पदार्थ न देवे तो (पंडिओ) बुद्धिमान् साधु (तत्थ) उस गृहस्थ पर (न कुप्पे) क्रोध न करे परन्तु ऐसा विचार

करे कि (परो) यह गृहस्थ है (इच्छा) इसकी इच्छा हो तो (दिज्ज) देवे (वा) अथवा इच्छा न हो तो (न) न देवे ॥२७।

सयणासणवत्थ वा, भत्त पाण व सजए ।
अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ ।२८।

अन्वयार्थ —(सयण) शय्या (आसण) आसन (वत्थ) वस्त्र (वा) अथवा (भत्त) आहार (व) और (पाण) पानी जो चाहे (पच्चक्खेविय) सामने रखे हुए (दीसओ) दिखाई देते हो फिर भी गृहस्थ (अदितस्स) यदि उन पदार्थों को न दे तो भी (सजए) साधु (न कुप्पिज्जा) उस पर क्रोध न करे क्योंकि दे या न दे गृहस्थ की मरजी है ।२८।

इत्थिय पुरिस वा वि, डहर वा महल्लग ।
वदमाण न जाइज्जा, नो य ण फरुस वए ॥२६॥

अन्वयार्थ —(वदमाण) वन्दना करते समय (इत्थिय) किसी भी स्त्री (वावि) अथवा (पुरिस) पुरुष (डहर) बालक (वा) अथवा (महल्लग) वृद्ध से (न जाइज्जा) साधु किसी प्रकार की याचना न करे (य ण) तथा आहार न देने वाले गृहस्थ को (फरुस) कठोर वचन भी (नो वए) न कहे ॥२६॥

जे न वदे न से कुप्पे, वदिओ न समुक्कसे ।
एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ।३०॥

अन्वयार्थ — (जे) जो गृहस्थ (न वदे) साधु को वन्दना न करे (से) उस पर (न कुप्पे) क्रोध न करे और (वदिओ) चाहे राजा महाराजा आदि वन्दना करते हों

तो (न समुक्कसे) अभिमान भी न करे कि देखो ! मैं कैसा माननीय हू जो राजा-महाराजा भी मेरे चरणों में गिरते हैं (एव) इस प्रकार (अत्तेसमाणस्स) भगवान् की आज्ञा के आराधक मुनि का (सामण्ण) साधुत्व चारित्र (अणुचिट्ठइ) निर्मल रहता है ॥३०॥

सिया एगइओ लद्धु, लोभेण विणिगूहइ ।
मामेय दाइय मत दट्ठूण सयमायए ।३१।

अन्वयार्थ — (सिया) यदि कदाचित् (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (लद्धु) सरस आहार मिलने पर (लोभेण) खाने के लोभ से (विणिगूहइ) उसे छिपा लेवे नीरस वस्तु को ऊपर रखकर सरस वस्तु को नीचे दबा देवे क्योकि (माम) यदि मैं (एय) इस आहार को (दाइय मत) गुरु महाराज को दिखलाऊँगा तो (दट्ठूण) इस सरस आहार को देखकर (सयमायए) शायद वे स्वय सबका सब ले लेवें मुझे कुछ भी न दें ॥३१॥

अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहु पाव पकुव्वइ ।
दुत्तोसओ य सो होइ, निव्वाण च न गच्छइ ।३२।

अन्वयार्थ - (अत्तट्ठागुरुओ) केवल अपने पेट भरने मे लगा हुआ (लुद्धो) रस लोलुपी (सो से) साधु (बहु) बहुत (पाव) पाप (पकुव्वइ) उपार्जन करता है (य) और सदा (दुत्तोसओ) असन्तोषी (होइ) बना रहता है (च) ऐसा साधु (निव्वाण) मोक्ष (न गच्छइ) प्राप्त नहीं कर सकता ॥३२॥

सिया एगइओ लद्धु, विविह पाणभोयण ।
भद्दगं भद्दगं भोच्चा विवन्न विरसमाहरे ॥३३॥

अन्वयार्थ — (एगइओ) अकेला गोचरी गया हुआ कोई एक रसलोलुपी साधु (सिया) कदाचित् ऐसा भी करे कि (विविह) अनेक प्रकार के (पाणभोयण) आहार पानी को (लद्धु) प्राप्त करके उसमे से (भद्दग भद्दग) अच्छे अच्छे सरस आहार को (भोच्चा-भुच्चा) वही कही पर एकान्त स्थान मे खाकर बाकी बचा हुआ (विवन्न) विवण और (विरस) नीरस आहार (आहरे) अपने स्थान पर लावे ॥३३॥

जाणतु ता इमे समणा, आययट्ठी अय मुणी ।
सतुट्ठो सेवए पत, लूहवित्ती सुतोसओ ॥३४॥

अन्वयार्थ — (ता) अच्छे अच्छे सरस आहार को मार्ग मे ही खा जाने वाला रसलोलुपी साधु ऐसा विचार करता है कि (इमे) स्थानक मे रहे हुए (समणा) साधु इस रूखे-सूखे आहार को देखकर (जाणतु) ऐसा जानेंगे कि (अय) यह (मुणी) मुनि (सतुट्ठो) बडा सतोषी और (आययट्ठी) बडा आत्मार्थी है इसीलिए (लूहवित्ती) सरस आहार की आकाक्षा नही करता किन्तु (सुतोसओ) जैसा आहार मिलता है उसी मे सतोष करता है और (पत) अन्त प्रान्त नीरस आहार का (सेवए) सेवन करता है। ३४॥

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माण कामए ।
बहु पसवई पाव, मायासल्ल च कुव्वइ ॥३५॥

अन्वयार्थ — इस प्रकार छल कपट से (पूयणट्ठा) पूजा को चाहने वाला (जसोकामी) यश की कामना करने वाला और (माणसम्माण कामए) मान सम्मान का अभि-

लापी वह रसलोलुपी साधु (बहु) बहुत (पार) पाप (पसवई) उपार्जन करता है (च) और (मायासल्ल) माया रूपी शल्य का (कुव्वइ) सेवन करता है ॥३५॥

सुरं वा मेरगं वावि, अन्न वा मज्जगं रस ।
ससक्खं न पिबे भिक्खू, जस सारक्खमप्पणो ॥३६॥

अन्वयार्थ — (अप्पणो) अपने (जस) संयम रूप निर्मल यश की (सारक्खं) रक्षा करने वाला (भिक्खू) साधु (ससक्खं) त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ भगवान् की साक्षी से (सुरं) जौ आदि के आटे से बनी हुई मदिरा (वा) अथवा (मेरगं) महुआ से बनी हुई मदिरा (वावि) अथवा (मज्जगं) मद का उत्पन्न करने वाले (अन्नं वा) दूसरे किसी भी (रसं) रस को (न पिबे) न पीवे ॥३६॥

पियए एगओ तेणो न मे कोइ वियाणइ ।
तस्स पस्सह दोसाइं, नियडिं च सुणेह मे ॥३७॥

अन्वयार्थ — (मे) मुझे (कोई) कोई भी (न) नहीं (वियाणइ) देखता है— ऐसा मानकर जो (तेणो) भगवान की आज्ञा का लोप करने वाला चोर साधु (एगओ) एकान्त स्थान में लुक छिपकर (पियए) मदिरा पीता है (तस्स) उसके (दोसाइं) दोषों को (पस्सह) देखो (च) और (मे) मैं उसके (नियडिं) मायाचार का वर्णन करता हू सो (सुणेह) तुम उसे सुनो ॥३७॥

वड्ढई सुंडिया तस्स, माया मोसं च भिक्खुणो ।
अयसो य अनिव्वाणं सययं च असाहुया ॥३८॥

अन्वयार्थ — (तस्स) मदिरा पान करने वाले

(भिक्खुणो) साधु की (सुडिया) आसक्ति (माया) कपट (च) और (मोम) मृषावाद (अयसो) अपयश (य) तथा (अनिव्वाण) अतृप्ति आदि दोष (सयय) निरतर (वड्ढई) बढते रहते है इस प्रकार वह (असाहुया) असाधुता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सयम से भ्रष्ट हो जाता है ।।३८।।

निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
तारिसो मरणते वि, न आराहेइ सवर ।।३९।।

अन्वयार्थ — (जहा) जिम प्रकार (तेणो) चोर (अत्तकम्मेहिं) अपने किये हुए दुश्चरित्रो से (निच्चुव्विग्गो) हमेशा व्याकुल बना रहता है उसी प्रकार (तारिसो) वह मदिरा पीने वाला (दुम्मई) दुर्बुद्धि साधु सदा व्याकुल एव भयभीत बना रहता है, उसके चित्त को कभी शान्ति नहीं मिलती ऐसा साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवर) चारित्र धर्म की (न आराहेइ) आराधना नही कर सकता ।।३९।।

आयरिए नाराहेइ, समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि ण गरिहंति, जेण जाणंति तारिस ।।४०।।

अन्वयार्थ —(तारिसो) वह मदिरा पीने वाला साधु (आयरिए) आचार्य महाराज तथा (समणे आवि) साधुओ की किसी की भी (नाराहेइ) विनय वैयावच्च आदि से आराधना नही कर सकता और (जेण) जब (गिहत्था) गृहस्थ लोग (ण) उस साधु के (तारिस) मदिरा पान रूपी दुर्गुण को (जाणति) जान लेते हैं तब (वि) वे भी (गरिहंति) उसकी निन्दा करते हैं ।।४०।

एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए ।
तारिसो मरणते वि, नाराहेइ सवर ॥४१॥

अन्वयार्थ – (एव तु) इस प्रकार (अगुणप्पेही) अवगुणो को धारण करने वाला (च) और (गुणाणं) ज्ञानादि गुणो को (विवज्जए-ओ) छोडने वाला (तारिसो) वह साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक भी (सवरं) चारित्र धम को (नाराहेइ) आराधना नही कर सकता ।४१।

तव कुव्वइ मेहावी, पणीय वज्जए रसं ।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥४२॥

अन्वयार्थ – (मज्जप्पमायविरओ) मदिरा पान एव प्रमादादि दुर्गुणो से रहित (तवस्सी) तपस्वी (मेहावी) बुद्धिमान साधु (पणीयं) स्निग्ध (रस) रसो को (वज्जए ओ) छोडकर (अइउक्कसो) निरभिमान पूर्वक (तव) तपस्या (कुव्वइ) करता है ॥४२॥

तस्स पस्सह कल्लाण, अणेगसाहुपूइय ।
विउल अत्यसजुत्त, कित्तइस्सं सुणेह मे ॥४३॥

अन्वयार्थ —गुरु शिष्यो से कहते हैं कि हे शिष्यो ! (तस्स) उपरोक्त गुणों के धारक साधु का (कल्लाण) कल्याण सयम (अणेगसाहुपूइय) अनेक मुनियो द्वारा पूजित एव प्रशसित (विउल) महान् (अत्यसजुत्त) मोक्षरूपी अर्थ से युक्त होता है (पस्सह) तुम उसे देखो तथा (कित्तइस्सं) मैं उस साधु के गुणो का वर्णन करूगा अत तुम (मे) मुझसे उन गुणों को (सुणेह) सुनो ॥४३॥

एव तु गुणप्पेही, अगुणाण च विवज्जए ।
तारिसो मरणते वि, आराहेइ सवर ॥४४॥

अन्वयार्थ — (एवतु) इस प्रकार (गुणप्पेही सगुण-प्पेही) ज्ञानादि गुणो को धारण करने वाला (च) और (अगुणाण) दुगु णो को (विवज्जए ग्रो) छोडने वाला (तारिसो) साधु (मरणते वि) मृत्यु के समय तक (सवर) ग्रहण किये हुए चारित्र धम की (आराहेइ) भली प्रकार आराधना करता रहता है अर्थात् मरणगत कष्ट पडने पर भी वह ग्रहण किये हुए चारित्र धर्म को नही छोडता ।४४।

आयरिए आराहेइ, समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि ण पूयति जेण जाणति तारिस ॥४५॥

अन्वयार्थ (तारिसो) उपरोक्त गुणो का धारक साधु (आयरिए) आचार्य महाराज की तथा (समणे आवि) दूसरे मुनियो की (आराहेइ) विनय वैयावच्च द्वारा आराधना करता है और (जेण) जब (गिहत्था वि) गृहस्थ लोगो को भी (ण) उसके (तारिस) उन गुणो का (जाणति) पता लग जाता है तब वे (पूयति) उसकी भक्ति करते हैं अर्थात् विशेष सन्मान की दृष्टि से देखते हैं और उसके गुणो की प्रशंसा करते हैं ॥४५॥

तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे ।
आयारभावतेणे य कुव्वइ देवकिव्विस । ४६॥

अन्वयार्थ (जे) जो (नरे) साधु (तवतेणे) तप का चोर (वयतेणे) वचन का चोर (य) और (रूवतेणे) रूप का चोर (य) तथा (आयार भावतेणे) आचार और भाव का चोर होता है वह (देवकिव्विस) नीच जाति के किल्विषी देवो में (कुव्वइ) उत्पन्न होता है ॥४६॥

लद्धूण वि देवत्तं, उववन्नो देव किव्विसे ।
तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इमं फलं ॥४७॥

अन्वयार्थ — उपरोक्त चोर साधु (देवत्तं) देवगति को (लद्धूण वि) प्राप्त करके भी (देव किव्विसे) अस्पृश्य जाति के किल्विषी देवों में (उववन्नो) उत्पन्न होता है। (तत्थावि) वहाँ पर भी (से) वह (न याणाइ) यह नहीं जानता कि (किं) मैंने ऐसा कौनसा कर्म (किच्चा) किया है जिससे (मे) मुझे (इमं) यह (फलं) फल प्राप्त हुआ है ॥४७॥

तत्तो वि से चइत्ताणं, लब्भिही एलमूयगं ।
नरगं तिरिक्खजोणिं वा, बोही जत्थ सुदुल्लहा ॥४८॥

अन्वयार्थ — (से) वह किल्विषी देव (तत्तो वि) वहाँ से (चइत्ताणं) चवकर (एलमूयगं) मूक-जो बोल न सके ऐसे बकरे आदि की योनि को पाकर फिर (नरगं) नरक गति को (वा) अथवा (तिरिक्खजोणिं) तिर्यंच योनि को (लब्भिही लब्भइ) प्राप्त होता है (जत्थ) जहाँ पर (बोहि) बोधि जिनधर्म की प्राप्ति होना (सुदुल्लहा) बड़ा दुर्लभ है ॥४८॥

एयं च दोसं दट्ठूण, णायपुत्तेण भासियं ।
अणुमायंपि मेहावी, मायामोसं विवज्जए ॥४९॥

अन्वयार्थ — (एयं च) इस प्रकार (दोसं) पूर्वोक्त दोषों को (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने (दट्ठूणं) केवलज्ञान से देखकर (भासियं) फरमाया है अतः (मेहावी) बुद्धिमान् साधु (अणुमायंपि) अणुमात्र भी (मायामोसं) कपटपूर्ण असत्य भाषण को (विवज्जए) वर्जे किंचिन्मात्र भी माया-मृषावाद का सेवन न करे ॥४९॥

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, सजयाण बुद्धाण सगासे ।
तत्थ भिक्खु सुप्पणिहिइदिए, तिव्वलज्जगुणवविहरिज्जासि
॥ ५० त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ -- (सुप्पणिहि इदिए-सुप्पणिहिदिए) जिते न्द्रिय एव एकाग्रचित्त वाला (तिव्वलज्ज) अनाचार से अत्यन्त लज्जा रखने वाला (गुणव) गुणवान् (भिक्खु-भिक्खू) साधु (बुद्धाण) तत्त्व को जानने वाले (सजयाण) साधुओ के (सगासे) पास (भिक्खेसणसोहि) भिक्षा के आधा कर्मादि दोषो को (सिक्खिऊण) सीखकर (तत्थ) एषणा समिति मे (विहरिज्जासि) उपयोग पूर्वक विचरे ॥५०॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

महाचार कथा नामक छट्ठा अध्ययन

नाणदंसण संपन्नं, संजमे य तवे रयं।
गणिमागम संपन्नं, उज्जाणम्मि समोसढं ॥१॥

रायाणो रायमच्चा य, माहणा अदुव खत्तिया।
पुच्छंति निहुअप्पाणो, कहं भे आयार गोयरो ॥२॥

अन्वयार्थ — (नाणदंसण संपन्नं) एक समय सम्यग् ज्ञान और सम्यक् दर्शन के धारी (संजमे) सतरह प्रकार संयम में (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप में (रयं) रत (आगमसंपन्नं) आचाराङ्गादि अङ्गोपाङ्ग रूप आगम के ज्ञाता (गणिं) छत्तीस गुणों के धारक आचार्य महाराज (उज्जाणम्मि) गाँव के समीप के बगीचे में (समोसढं) पधारे तब (रायाणो) राजा (य) और (रायमच्चा) राज मंत्री (माहणा) ब्राह्मण (अदुव) और (खत्तिया) क्षत्रिय (निहुअप्पाणो) मन की चपलता को छोड़कर भक्ति और विनय पूर्वक (पुच्छंति) उनसे पूछते हैं कि हे भगवन्! (भे) आप लोगों का (आयार गोयरो) आचार और गोचर भिक्षावृत्ति आदि धर्म (कहं) किस प्रकार का है ॥१ २॥

तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूय सुहावहो।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आयक्खइ वियक्खणो ॥३॥

अन्वयार्थ —(निहुओ) निश्चल चपलता रहित (दंतो)

इन्द्रियो के दमन करने वाले (सव्वभूय सुहावहो) सब प्राणियो का हित चाहने वाले (सिक्खाए) ग्रहण आसेवन रूप शिक्षा से (सुसमाउत्तो) सुसपन्न (वियक्खणो) विचक्षण धर्मोपदेश मे कुशल (सो) वे आचार्य महाराज (तेसिं) उन राजा आदि को (आयक्खइ) जैन साधुओ का आचार गोचर रूप धर्म कहते हैं अर्थात् उनके प्रश्न का उत्तर देते हैं ॥३॥

हंदि धम्मत्थकामाण, निग्गथाण सुणेह मे ।
आयार गोयर भीम, सयल दुरहिट्ठिय ॥४॥

अन्वयार्थ — (हंदि) हे देवानुप्रियो ! (धम्मत्थ-कामाण) धम-श्रुतचारित्र रूप धर्म और अर्थ-मोक्ष के लिए अभिलाषी (निग्गथाण) निग्रन्थ मुनियो का (सयल) समस्त (आयार गोयर) आचार गोचर जो कि (भीम) कर्म रूपी शत्रुओ के लिए भयकर है तथा (दुरहिट्ठिय) जिसे धारण करने मे कायर पुरुष घबराते हैं ऐसे आचार गोचर का (मे) मैं वर्णन करता हू अत (सुणेह) तुम सावधान होकर सुनो ।४॥

नन्नत्थ एरिस वुत्त, ज लोए परमदुच्चर ।
विउलट्ठाण भाइस्स, न भूय न भविस्सइ ॥५॥

अन्वयार्थ — (विउलट्ठाण भाइस्स) विपुल स्थान मोक्ष मार्ग के आराधक मुनियो का (एरिस) इस प्रकार का उन्नत आचार (अन्नत्थ) जिन शासन के अतिरिक्त अन्य मतो मे (न वुत्त) कही भी नही कहा गया है (ज) जो (लोए) लोक में (परमदुच्चर) अत्यन्त दुष्कर है अर्थात्

जिसका पालन करना बहुत कठिन है। जिनशासन के सिवाय अन्य मतों में ऐसा आचार (न भूय) न तो गत काल में कहीं हुआ है और (न भविस्सइ) न आगामी काल में कहीं होगा और न वर्तमान काल में कहीं है ॥५॥

> सखुड्डगवियत्ताणं, वाहियाणं च जे गुणा।
> अखंडफुडिया कायव्वा, तं सुणेह जहा तहा ॥६॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (गुणा) गुण (सखुड्डगवियत्ताण) बालक एवं वृद्धों को (वाहियाणं च) स्वस्थ एवं अस्वस्थ सभी को सब अवस्थाओं में (अखंडफुडिया) अखंड एवं निर्दोष रूप से अर्थात् देश विराधना और सर्व विराधना से रहित (कायव्वा) धारण करने चाहियें (तं) उन गुणों का (जहा) जैसा स्वरूप है (तहा) वैसा ही मैं वर्णन करता हूं (सुणेह) अतः तुम सावधान होकर सुनो ॥६॥

> दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालोऽवरज्झइ।
> तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताउ भस्सइ ॥७॥

अन्वयार्थ — (दस अट्ठ य) साधु आचार के अठारह (ठाणाइं) स्थान हैं। (बालो) जो बाल-अज्ञानी साधु (जाइं) इन (तत्थ) अठारह स्थानों में से (अन्नयरे) किसी एक भी (ठाणे) स्थान की (अवरज्झइ) विराधना करता है वह (निग्गंथत्ताउ-निग्गंथत्ताओ) साधुपने से (भस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है। ७।

> वयछक्क कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं।
> पलियंक निसज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ॥८॥

अन्वयार्थ — (वयछक्क) छः व्रत अर्थात् प्राणाति-

पात विरमण आदि पाच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन त्याग रूप छ व्रतो का पालन करना (कायछक्क) छ काय अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छ काय जीवो की रक्षा करना (अकप्पो) अकल्पनीय पदार्थों को ग्रहण न करना। (गिहिभायण) गृहस्थ के बर्तन मे भोजनादि न करना (पलियक) पलग पर न बैठना (निसज्जा-निसिज्जा-निसेज्जा) गृहस्थ के आसन पर न बैठना (सिणाण) स्नान (य) तथा (सोहवज्जण) शरीर की शोभा का त्याग करना, साधु के ये अठारह स्थान हैं ॥८॥

तत्थिम पढम ठाण, महावीरेण देसिय ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु सजमो । ९॥

अन्वयार्थ — (सव्वभूएसु) प्राणी मात्र पर (सजमो) दया रूप (अहिंसा) अहिंसा (निउणा) अनन्त सुखो को देने वाली ह ऐसा (महावीरेण) भगवान् महावीर ने (दिट्ठा) केवलज्ञान मे देखा है। इसीलिए भगवान् ने (तत्थ) उपरोक्त अठारह स्थानो मे (इम) इस अहिंसा व्रत को (पढम) पहला (ठाण) स्थान (देसिय) कहा है ॥९॥

जावति लोए पाणा तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाण वा, न हणे णो वि घायए ।।१०॥

अन्वयार्थ — (लोए) चौदह राजू परिमाण लोक मे (जावति) जितने (तसा) त्रस (अदुव) अथवा (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी हैं (ते) उनको (जाण) जानकर (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से-प्रमादवश (न हणे)

स्वय मारे नही (णो वि) और न दूसरो से (घायए) घात ही करावे इसी प्रकार मारने वाले की अनुमोदना भी न करे ॥१०॥ हिंसा क्यो न करनी चाहिए इसके लिए सूत्र कार कहते हैं कि –

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥११॥

अन्वयार्थ — (सव्वे वि) त्रस स्थावर आदि सभी (जीवा) जीव (जीविउं) जीना (इच्छंति) चाहते हैं लेकिन (न मरिज्जिउं) मरना कोई भी नही चाहता (तम्हा) इसी लिए (निग्गंथा) छ काया के रक्षक निर्ग्रन्थ साधु (णं) उस (घोरं) महा भयकर (पाणिवहं) प्राणिवध जीव हिंसा का (वज्जयंति) सर्वथा त्याग करते हैं ॥११॥

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥१२॥

अन्वयार्थ — साधु (अप्पणट्ठा) अपने खुद के लिए (वा) अथवा) (परट्ठा) दूसरो के लिए (कोहा) क्रोध से (वा) अथवा मान माया लोभ से (जइवा) अथवा (भया) भय से (हिंसगं) पर पीडाकारी जिससे दूसरों को दुःख पहुचे ऐसा (मुसं) झूठ (न बूया) स्वयं न बोले (नो वि) और न (अन्नं) दूसरो से (वयावए) बोलावे तथा झूठ बोलने वालो का अनुमोदन भी न करे ॥१२॥

मुसावाओ य लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ॥१३॥

अन्वयार्थ — (लोगम्मि) ससार में (सव्वसाहूहिं)

सब महापुरुषों ने (मुसावाओ) असत्य भाषण को (गरिहिओ) निन्दित बतलाया है (य) क्योंकि असत्य भाषण (भूयाण) सब प्राणियो के लिए (अविस्सासो) अविश्वसनीय है अर्थात् असत्यवादी का कोई विश्वास नहीं करता (तम्हा) इसलिए (मोस) मृषावाद का (विवज्जए) सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥

चित्तमतमचित्तं वा, अप्प वा जइ वा बहु ।
दतसोहणमित्त पि, उग्गह सि अजाइया ॥१४॥

त अप्पणा न गिण्हति, नो वि गिण्हावए पर ।
अन्न वा गिण्हमाण पि, नाणुजाणति सजया ॥१५॥

अन्वयार्थ —(चित्तमत) सचेतन-शिष्यादिक हो (वा) अथवा (अचित्त) अचेतन वस्त्र पात्रादिक हो (बहु) बहुमूल्य पदार्थ हो (जइ वा) अथवा (अप्प) अल्प मूल्य वाला पदार्थ हो यहाँ तक कि (दतसोहणमित्त पि) दात कुरेदने का तिनका भी हो (सजया) साधु (सि से) उस वस्तु के स्वामी की (उग्गह) आज्ञा (अजाइया) मागे विना (त) उस पदार्थ को (अप्पणा) आप स्वय (न गिण्हति) ग्रहण नही करते (नो वि) और न (पर) दूसरो से (गिण्हावए) ग्रहण करवाते हैं (वा) और (गिण्हमाण पि) ग्रहण करते हुए (अन्न) दूसरो को (नाणुजाणति) भला भी नही समझते ॥१४-१५॥

अवभचरिय घोर, पमाय दुरहिट्ठिय ।
नायरति मुणी लोए, भेयाययण वज्जिणो ॥१६॥

अन्वयार्थ — (लोए) लोक मे (भेयाययण वज्जिणो)

चारित्र का भग करने वाले स्थानो को वर्जने वाले पाप भीरु (मुणी) मुनि (घोर) नरकादि दुर्गतियो मे डालने वाला अतएव भयकर (पमाय) प्रमाद को पदा करने वाला (दुरहिट्ठिय) परिणाम मे दु खदायी (अबभचरिय) अब्रह्मचर्य का (नारयति कदापि सेवन नही करते ॥१६॥

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सय ।
तम्हा मेहूण ससग्ग, निग्गथा वज्जयति ण ॥१७॥

अन्वयार्थ —(एय) यह अब्रह्मचर्य (अहम्मस्स) अधर्म का (मूल) मूल है और (महादोससमुस्सय) महादोषों का समूह है (तम्हा) इसीलिए (निग्गथा) निग्रन्थ साधु (मेहूण ससग्ग) मैथुन के ससर्ग को (ण) सर्वथा प्रकार से (वज्ज यति) छोडते हैं ॥१७॥

विडमुब्भेइम लोण तिल्ल सप्पि च फाणिय ।
न ते सनिहिमिच्छति, णायपुत्तवओरया ॥१८॥

अन्वयार्थ — (णायपुत्तवओरया) ज्ञानपुत्र भगवान् महावीर के वचनो मे जो रत रहते हैं (ते) वे मुनि (विड विड) बिड लवण (उब्भेइमं) सामुद्रिक (लोणं) लवण (तिल्ल) तेल (सप्पि) घी (च) और (फाणिय) गीला गुड आदि पदार्थों का (सनिहिं) सग्रह करना रात्रि मे बासी रखना (न इच्छति) नही चाहते ॥१८॥

भावार्थ — भगवान् की आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले मुनि अशनादि किसी पदार्थ का सग्रह करना तो दूर रहा किन्तु सग्रह करने की इच्छा तक नहीं करते ।

लोहस्सेस अणुप्फासे, मन्ने अन्नयरामवि ।
जे सिया सनिहिं कामे, गिही पव्वइए न से ॥१६॥

अन्वयार्थ — (एस) यह सन्निधि सग्रह (लोहस्स) लोभ का (अणुप्कासे) अनुस्पर्श प्रभाव है अत (मन्ने) तीर्थंकर देव ऐसा मानते है अथवा तीर्थंकर और गणधरो ने ऐसा कहा है कि (सिया) यदि कदाचित् किसी भी समय (जे) जो साधु (अन्नयरामवि) किंचिन्मात्र भी (सन्निहिं) सग्रह करना तो दूर रहा किन्तु सग्रह करने की (कामे) इच्छा करता है तो (से) वह (न पव्वइए) साधु नही किन्तु (गिही) गृहस्थ है ॥१६॥

"ज पि वत्थ व पाय वा, कवल पायपुछण ।
त पि सजम लज्जट्ठा धारति परिहरति य ॥२०॥

अन्वयार्थ —यदि कोई यह शका करे कि साधु वस्त्र पात्र आदि वस्तुए अपने पास रखते हैं तो क्या ये वस्तुएं सग्रह या परिग्रह नही हैं ? इसका समाधान किया जाता है कि (ज पि) साधु लोग जो (वत्थ) वस्त्र (व) अथवा (पाय) पात्र (कवल) कम्बल (वा) अथवा (पायपु छण) रजोहरण आदि शास्त्रोक्त सयम के उपकरण (धारति) धारण करते हैं (य) और (परिहरति) अनासक्ति भाव से उनका उपभोग करते है (तपि) वह (सजमलज्जट्ठा) केवल सयम की रक्षा के लिए और लज्जा के लिए ही करते हैं ॥२०॥

"न सो परिग्गहो वुत्तो, णायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२१॥

अन्वयार्थ — वस्त्र पात्रादि रखने से साधु को परिग्रह दोष क्यों नहीं लगता ? इसका समाधान किया जाता है (ताइणा) प्राणीमात्र के रक्षक (नायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने (सो) अनासक्ति भाव से वस्त्र पात्रादि रखने को (परिग्गहो) परिग्रह (न वुत्तो) नहीं कहा है किन्तु (मुच्छा) मूर्च्छाभाव को ही अर्थात् किसी वस्तु में आसक्ति रखने को ही (परिग्गहो) परिग्रह (वुत्तो) कहा है और (इइ इय) ऐसा ही (महेसिणा) महर्षि गणधर देव ने अथवा सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी से (वुत्तो) कहा है ॥२१॥

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खण परिग्गहे ।
अवि अप्पणो वि देहम्मि, नायरंति ममाइयं ॥२२॥

अन्वयार्थ — (बुद्धा) तत्त्वज्ञ मुनि (सव्वत्थुवहिणा) संयम के सहायभूत वस्त्र पात्रादि उपकरणों को (संरक्खण परिग्गहे) एकमात्र संयम की रक्षा के लिए ही रखते हैं किन्तु मूर्च्छाभाव से नहीं (अवि) और विशेष तो क्या वे तो (अप्पणो वि) अपने (देहम्मि) शरीर पर भी (ममाइय) ममत्व भाव (नायरंति) नहीं रखते ॥२२॥

अहो निच्चं तवोकम्मं, सव्वबुद्धेहिं वण्णियं ।
जाव लज्जासमा वित्ती, एगभत्तं च भोयणं ॥२३॥

अन्वयार्थ — (सव्वबुद्धेहिं) सभी ज्ञानी पुरुषों ने (वण्णियं) कहा है कि (अहो) अहा ! साधु पुरुषों के लिए यह कैसा (निच्चं) नित्य (तवोकम्मं) तप है (जावज्जीव) जो जीवन पर्यन्त (लज्जासमा) संयम निर्वाह के लिए (वित्ती) भिक्षा वृत्ति करनी होती है और (एगभत्तं) एक

वार अथवा सिर्फ दिन मे ही (भोयण) आहार करना होता है और रात्रिभोजन का सवथा त्याग करना होता है ।२३।

सतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाइ राओ अपासतो, कहमेसणिय चरे ॥२४॥

अन्वयार्थ — (इमे) ये ससार में बहुत से (तसा) त्रस (अदुव) और (थावरा) स्थावर (पाणा) प्राणी (सुहुमा) इतने सूक्ष्म (सति) होते हैं (जाइ) जो (राओ) रात्रि मे (अपासतो) दिखाई नही देते तो फिर उनकी रक्षा करते हुए (एसणिय) आहार की शुद्ध एपणा और (चरे) भोजन करना (कह) कैसे हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता है ॥२४॥

उदउल्ल बीयससत्त, पाणा निवडिया महिं ।
दिआ ताइ विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कह चरे ॥२५॥

अन्वयार्थ — (महिं) जमीन पर (उदउल्ल) पडा हुआ पानी अथवा सचित्त जल मिश्रित आहार (बीयससत्त) जमीन पर बिखरे हुए बीज अथवा सचित्त बीजादि से युक्त आहार (निवडिया) और जमीन पर रहे हुए (पाणा) कीडे मकोडे आदि प्राणी (ताइ) इन सब को (दिआ) दिन मे तो (विवज्जिज्जा) आखों से देखकर बचाया जा सकता है किन्तु (राओ) रात्रि मे (तत्थ) उनकी रक्षा करते हुए (कह) कैसे (चरे) चला जा सकता है ॥२५॥

भावार्थ — साधु के लिए रात्रिभोजन और रात्रिविहार दोनों का निषेध है ।

एय च दोस दट्ठूण, णायपुत्तेण भासियं ।
सव्वाहार न भुजति, निग्गथा राइभोयण ॥२६॥

अन्वयार्थ — (णायपुत्तेण) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के (भासिय) बतलाये हुए (एय) इन प्राणिहिंसा रूप (च) तथा आत्मविराधना रूप (दोस) दोषों को (दट्ठूण) देख कर-जानकर (निग्गया) निर्ग्रन्थ मुनि (सव्वाहारं) चार प्रकार के आहारों में से किसी भी प्रकार का आहार (राइभोयण) रात्रि में (न भुंजति) नहीं करते ॥२६॥

पुढविकाय न हिंसति मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, संजया सुसमाहिया ॥२७॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवन्त (संजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप (तिविहेण-ण) तीन (जोएण-ण) योगों से और (करण) कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (पुढविकाय) पृथ्वीकाय की (न हिंसति) हिंसा नहीं करते, दूसरों से नहीं करवाते, करने वालों की अनुमोदना भी नहीं करते ॥२७॥

पुढविकायं विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥२८॥

अन्वयार्थ —(पुढविकायं) पृथ्वीकाय की (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय में रहे हुए (चक्खुसे) चक्षुओं द्वारा दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओं द्वारा नहीं दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियों की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ॥२८॥

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइ वड्ढणं ।
पुढविकाय समारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥२६॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (पुढविकायसमारभ) पृथ्वीकाय के समारभ का (जावज्जीवाए जावज्जीवाइ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥२९॥

आउकाय न हिंसति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करण जोएण, सजया सुसमाहिया ॥३०॥

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिविहेण) तीन (जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (आउकाय) अप्काय की (न हिंसति) हिंसा नही करते, दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते ॥३०॥

आउकाय विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥३१॥

अन्वयार्थ — (आउकाय) अप्काय की (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुप (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुप (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्रणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ३१।

तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइवड्ढण ।
आउकायसमारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥३२॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो

को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (आउकायसमारंभं) अप्काय के समारंभ का (जावज्जीवाए इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३२॥

जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए।
तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं ॥३३।

अन्वयार्थ — साधु (जायतेयं) अग्नि को (जलइत्तए) सुलगाने की (न इच्छंति) कभी भी इच्छा न करे क्योंकि यह (पावगं) पापकारी है और (अन्नयरं सत्थं) लोह के अस्त्रशस्त्रों की अपेक्षा भी (तिक्खं) अधिक तीक्ष्ण शस्त्र है (सव्वओ वि दुरासयं) उसे सह लेना अत्यन्त दुष्कर है।३३।

पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणुदिसामवि।
अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओ वि य ॥३४॥

अन्वयार्थ — (पाईणं) पूर्व (वावि) और (पडिणं) पश्चिम (दाहिणओ) दक्षिण (वावि) और (उत्तरओ वि) उत्तर दिशा में (य) तथा (अणुदिसामवि) चारों विदिशाओं में (उड्ढ) ऊँची और (अहे) नीची दिशा में अर्थात् दस दिशाओं में रहे हुए जीवों को (दहे) यह अग्नि जला कर भस्म कर देती है ॥३४॥

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ।
तं पईवपयावट्ठा, संजया किंचि नारभे ॥३५॥

अन्वयार्थ —(एसं) यह (हव्ववाहो) अग्नि (भूयाणं) प्राणियों का (आघाओ) आघात स्वरूप है अर्थात् प्राणियों को घात करने वाली है (न संसओ) इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इसलिए (संजया) संयमी मुनि (तं) उस अग्नि

का (पईवपयावट्ठा) प्रकाश के लिए तथा शीत निवारण आदि कार्यों के लिए (किंचि) किंचिन्मात्र भी (नारभे) आरम्भ नही करे ॥३५॥

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ।
तेउकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए । ३६॥

अन्वयार्थ – (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तेउकाय समारभ) अग्निकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए इ) जीवन-पर्यन्त (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३६॥

अणिलस्स,समारभ, बुद्धा मन्नति तारिस ।
सावज्ज बहुल चेय, नेय ताईहि सेविय ॥३७॥

अन्वयार्थ — (बुद्धा) तीर्थंकर भगवान् (अणिलस्स) वायुकाय के (समारभ) आरम्भ को (तारिस) उसी प्रकार का अर्थात् अग्निकाय के आरम्भ जैसा (सावज्जबहुल) अत्यन्त पापकारी (मन्नति) मानते हैं केवलज्ञान द्वारा जानते हैं (एय च) इस कारण से (ताईहि) छकाय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) वायुकाय का समारम्भ (न सेविय) कदापि न करना चाहिए। ३७॥

तालियटेण पत्तेण, साहाविहूयणेण वा ।
न ते वीइउमिच्छति, वीयावेऊण वा पर ॥३८॥

अन्वयार्थ – (ते) वे छकाय जीवो के रक्षक मुनि (तालियटेण) ताल के पखे से (पत्तेण) पत्ते से (वा) अथवा

को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (आउकायसमारम्भं) अप्काय के समारम्भ का (जावज्जीवाए इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३२॥

जायतेयं न इच्छंति, पावगं जलइत्तए।
तिक्खमन्नयरं सत्थं, सव्वओ वि दुरासयं ॥३३॥

अन्वयार्थ — साधु (जायतेयं) अग्नि को (जलइत्तए) सुलगाने की (न इच्छंति) कभी भी इच्छा न करे क्योंकि वह (पावगं) पापकारी है और (अन्नयरं सत्थं) लोह के अस्त्रशस्त्रों की अपेक्षा भी (तिक्खं) अधिक तीक्ष्ण शस्त्र है (सव्वओ वि दुरासयं) उसे सह लेना अत्यन्त दुष्कर है ॥३३॥

पाईणं पडिणं वावि, उड्ढं अणुदिसामवि।
अहे दाहिणओ वावि, दहे उत्तरओ वि य ॥३४॥

अन्वयार्थ — (पाईणं) पूर्व (वावि) और (पडिणं) पश्चिम (दाहिणओ) दक्षिण (वावि) और (उत्तरओ वि) उत्तर दिशा में (य) तथा (अणुदिसामवि) चारों विदिशाओं में (उड्ढं) ऊँची और (अहे) नीची दिशा में अर्थात् दस दिशाओं में रहे हुए जीवों को (दहे) यह अग्नि जला कर भस्म कर देती है ॥३४॥

भूयाणमेसमाघाओ, हव्ववाहो न संसओ।
तं पईवपयावट्ठा, संजया किंचि नारभे ॥३५॥

अन्वयार्थ —(एस) यह (हव्ववाहो) अग्नि (भूयाणं) प्राणियों का (आघाओ) आघात स्वरूप है अर्थात् प्राणियों की घात करने वाली है (न संसओ) इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इसलिए (संजया) संयमी मुनि (तं) उस अग्नि

का (पईवपयावट्ठा) प्रकाश के लिए तथा शीत निवारण आदि कार्यों के लिए (किंचि) किंचिन्मात्र भी (नारभे) आरम्भ नही करे ॥३५॥

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ।
तेउकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥३६॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) उपरोक्त (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तेउकाय समारभ) अग्निकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए इ) जीवनपर्यन्त (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥३६॥

अणिलस्स समारभ, बुद्धा मन्नति तारिस ।
सावज्ज बहुल चेय, नेय ताईहि सेविय ॥३७॥

अन्वयार्थ — (बुद्धा) तीर्थंकर भगवान् (अणिलस्स) वायुकाय के (समारभ) आरम्भ को (तारिस) उसी प्रकार का अर्थात् अग्निकाय के आरम्भ जैसा (सावज्जबहुल) अत्यन्त पापकारी (मन्नति) मानते हैं केवलज्ञान द्वारा जानते हैं (एय च) इस कारण से (ताईहि) छ काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) वायुकाय का समारम्भ (न सेविय) कदापि न करना चाहिए'। ३७॥

तालियटेण पत्तेण, साहाविहूयणेण वा ।
न ते वीइउमिच्छति, वीयावेऊण वा पर ॥३८॥

अन्वयार्थ — (ते) वे छ काय जीवो के रक्षक मुनि (तालियटेण) ताल के पखे से (पत्तेण) पत्ते से (वा) अथवा

(साहाविहुयणेण) वृक्ष की शाखा को हिलाकर (वीइउं) अपने ऊपर हवा करना (न) नही (इच्छंति) चाहते (वा) और न (परं) दूसरे से (वीयावेऊण) हवा करवाना चाहते हैं तथा हवा करने वालों की अनुमोदना भी नही करते ।।३८।।

ज पि वत्थ व पाय वा, कबल पायपुछण ।
न ते वायमुईरति, जय परिहरति य ।।३९।।

अन्वयार्थ — (ज पि) जो (वत्थ) वस्त्र (व) और (पाय) पात्र (कबल) कबल (वा) अथवा (पायपुछण) रजोहरण आदि संयमोपकरण साधु के पास हैं उनसे भी (ते) वे (वाय) वायु की (न उईरति) उदीरणा नहीं करते (य) किन्तु (जयं) यतनापूर्वक (परिहरति) धारण करते हैं जिससे वायुकाय की विराधना नही होती ।।३९।।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ।
वायुकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ।।४०।।

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरक आदि दुर्गतियो का बढ़ाने वाले (एय) इन (दोस) दोषों को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वायुकाय समारभं) वायुकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ।।४०।।

वणस्सई न हिंसति, मणसा वयसा कायसा ।
तिविहेण करणजोएण, सजया सुसमाहिया ।।४१।।

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवंत (संजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन काया रूप (तिवि

हेण) तीन (जोएण जोएण) योगो से और (करण) कृत कारित अनुमोदना रूप तीन करण से (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (न हिंसति) हिंसा नही करते दूसरो से नही करवाते और करने वालो की अनुमोदना भी नही करते।४१।

वणस्सइ विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४२॥

अन्वयार्थ — (वणस्सइ) वनस्पतिकाय की (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चक्षुओ द्वारा दिखाई देने वाले (य) और (अचक्खुसे) चक्षुओ द्वारा नही दिखाई देने वाले (विविहे) अनेक प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियो की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है।४२।

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण।
वणस्सइसमारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥४३॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियों को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषो को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (वणस्सइसमारभ) वनस्पतिकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४३॥

तसकाय न हिंसंति, मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करण जोएण, सजया सुसमाहिया।४४।

अन्वयार्थ — (सुसमाहिया) सुसमाधिवत (सजया) साधु (मणसा वयसा कायसा) मन वचन और काया रूप

(तिविहेण) तीन (जोएणं-जोएण) योगों से और (करण) तीन करण से (तसकाय) त्रसकाय की (न हिंसंति) हिंसा नहीं करते दूसरों से नहीं करवाते और करने वालों की अनुमोदना भी नहीं करते । ४४।

तसकाय विहिंसंतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे, चक्खुसे य अचक्खुसे ॥४५॥

अन्वयार्थ — (तसकाय) त्रसकाय की (विहिंसंतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसके नेश्राय में रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) नाना प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियों की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ।४५

तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
तसकाय समारंभं, जावज्जीवाए वज्जए ॥४६॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढणं) नरकादि दुर्गतियों को बढ़ाने वाले (एयं) इस (दोसं) दोष को (वियाणित्ता) जानकर साधु को (तसकाय समारंभ) त्रसकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-ए) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ॥४६॥

जाइं चत्तारिऽभुज्जाइं, इसिणाऽऽहारमाइणि ।
ताइं तु विवज्जंतो संजमं अणुपालए ॥४७।

अन्वयार्थ — (जाइं) जो (आहारमाइणि) आहार, शय्या, वस्त्र पात्रादि (चत्तारि) चार पदार्थ (इसिणा) मुनियों के लिए (अभुज्जाइं अभोज्याइं) अकल्पनीय हैं (ताइं)

उनको (तु) निश्चय पूर्वक (विवज्जतो) त्यागता हुआ साधु (संजम) संयम का (अणुपालए) यथाविधि पालन करे ।४७।

पिंड सिज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥४८॥

अन्वयार्थ — (पिंड) आहार (च) और (सिज्ज) शय्या (च) तथा (वत्थ) वस्त्र (य) और (चउत्थ) चौथा (पायमेव) पात्र ये यदि (अकप्पियं) अकल्पनीय हो तो साधु (न इच्छिज्जा) ग्रहण न करे और यदि (कप्पियं) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण कर सकता है ॥४८॥

जे नियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाहडं ।
वहं ते समणुजाणंति इइ वुत्तं महेसिणा ॥४९॥

अन्वयार्थ —(नियागं) आमंत्रित पिण्ड (कीय) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये हुए और (अहड) साधु के निमित्त उसके सामने लाये हुए आहारादि को (जे) जो साधु (ममायंति) ग्रहण करते हैं (ते) वे (वहं) प्राणिवध-हिंसा की (समणुजाणंति) अनुमोदना करते हैं (इइ इय। इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर ने (वुत्तं-उक्त) कहा है ॥४९॥

तम्हा असणपाणाइं, कीयमुद्देसियाहडं ।
वज्जयंति ठिअप्पाणो, निग्गंथा धम्मजीविणो ॥५०॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (ठिअप्पाणो) संयम में स्थिर आत्मा वाले (धम्मजीविणो) धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले (निग्गंथा) निर्ग्रन्थ मुनि (कीय) साधु के वास्ते मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये

(तिविहेण) तीन (जोएण-जोएण) योगो से और (करण) तीन करण से (तसकाय) त्रसकाय की (न हिंसति) हिंसा नही करते दूसरो से नही करवाते, और करने वाला को अनुमोदना भी नही करते ।४४।।

तसकाय विहिंसतो, हिंसई उ तयस्सिए ।
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे ।।४५।।

अन्वयार्थ — (तसकाय) त्रसकाय को (विहिंसतो) हिंसा करता हुआ प्राणी (तयस्सिए) उसकी नेश्राय मे रहे हुए (चक्खुसे) चाक्षुष (य) और (अचक्खुसे) अचाक्षुष (विविहे) नाना प्रकार के (तसे) त्रस (य) और स्थावर (पाणे) प्राणियों की भी (हिंसई उ) हिंसा कर देता है ।४५।

तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइवड्ढण ।
तसकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ।।४६।।

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (दुग्गइवड्ढण) नरकादि दुर्गतियो को बढाने वाले (एय) इन (दोस) दोषों को (वियाणित्ता), जानकर साधु को (तसकाय समारभ) त्रसकाय के समारम्भ का (जावज्जीवाए-इ) यावज्जीवन के लिए (वज्जए) त्याग कर देना चाहिए ।।४६।।

जाइ चत्तारिऽभुज्जाइ, इसिणाऽऽहारमाइणि ।
ताइ तु विवज्जतो सजम अणुपालए ।।४७।

अन्वयार्थ — (जाइ) जो (आहारमाइणि) आहार, शय्या, वस्त्र पात्रादि (चत्तारि)--चार पदार्थ (इसिणा) मुनियो के लिए (अभुज्जाइ-अभोज्जाइ) अकल्पनीय हैं (ताइ)

उनको (तु) निश्चय पूवक (विवज्जतो) त्यागता हुआ साधु (सजम) सयम का (अणुपालए) यथाविधि पालन करे।४७।

पिंड सिज्ज च वत्थ च, चउत्थ पायमेव य ।
अकप्पिय न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पिय ॥४८॥

अन्वयार्थ — (पिंड) आहार (च) और (सिज्ज) शय्या (च) तथा (वत्थ) वस्त्र (य) और (चउत्थ) चौथा (पायमेव) पात्र ये यदि (अकप्पिय) अकल्पनीय हो तो साधु (न इच्छिज्जा) ग्रहण न करे और यदि (कप्पिय) कल्पनीय हो तो (पडिगाहिज्ज) ग्रहण कर सकता है ॥४८॥

जे नियाग ममायति, कीयमुद्देसियाहड ।
वह ते समणुजाणति इइ वुत्त महेसिणा ॥४९॥

अन्वयार्थ —(नियाग) आमन्त्रित पिण्ड (कीय) साधु के लिए मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये हुए और (अहड) साधु के निमित्त उसके सामने लाये हुए आहारादि को (जे) जो साधु (ममायति) ग्रहण करते हैं (ते) वे (वह) प्राणिवध-हिंसा की (समणुजाणति) अनुमोदना करते हैं (इइ इय। इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर ने (वुत्त-उत्त) कहा है ॥४९॥

तम्हा असणपाणाइ, कीयमुद्देसियाहड ।
वज्जयति ठिअप्पाणो, निग्गथा धम्मजीविणो ॥५०॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (ठिअप्पाणो) सयम मे स्थिर आत्मा वाले (धम्मजीविणो) धर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (कीय) साधु के वास्ते मोल लिए हुए (उद्देसिय) औद्देशिक साधु के निमित्त बनाये

हुए और (आहड) साधु के निमित्त सन्मुख लाये हुए (असणं-पाणाइ) आहार पानी आदि को (वज्जयंति) ग्रहण नहीं करते ॥५०॥

> कंसेसु कंसपाएसु, कुंडमोएसु वा पुणो ।
> भुंजंतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सइ ॥५१॥

अन्वयार्थ - जो साधु (कंसेसु) गृहस्थ की कांसी आदि का कटोरो मे (वा) अथवा (कंसपाएसु) कांसी आदि के थाल मे (पुणो) और (कुंडमोएसु) मिट्टी के बरतन मे (असण पाणाइं) आहार पानी (भुंजंतो) भोगता है वह (आयारा) चारित्र धर्म से (परिभस्सइ) भ्रष्ट हो जाता है ॥५१॥

> सीओदगसमारंभे, मत्तधोअणछड्डणे ।
> जाइं छन्नंति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥५२॥

अन्वयार्थ — जब साधु गृहस्थ के बर्तन में भोजन करने लग जायगा तो (सीओदगसमारंभे) सचित्त जल का आरम्भ होगा—अर्थात् गृहस्थ उस बर्तन को कच्चे जल से धोवेगा उसमें अप्काय की हिंसा होगी और (मत्तधोअण छड्डणे) बर्तनों को धोये हुए पानी को अयतनापूर्वक इधर उधर गिराने में (जाइं भूयाइं) बहुत से जीवों की (छन्नंति-क्षणंति छिप्पंति) हिंसा होगी अत (तत्थ, गृहस्थ के बर्तन में भोजन करने में तीर्थंकर देव ने केवलज्ञान द्वारा (असंजमो) असंयम (दिट्ठो) देखा है ॥५२॥

> पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, सिया तत्थ न कप्पइ ।
> एयमट्ठं न भुंजंति, निग्गंथा गिहिभायणे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(तत्थ) गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने से (पच्छाकम्म) पश्चात्कम और (पुरेकम्म) पुरकम दोष (सिया) लगने की सभावना रहती है अत साधु को यह (न कप्पइ) नही कल्पता है (एयमट्ठं) इसलिए (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनि (गिहीभायणे) गृहस्थ के बर्तन मे (न भुजति) भोजन नही करते हैं ॥५३॥

आसदी पलिअकेसु मचमासालएसु वा ।
अणायरियमज्जाण आसइत्तु सइत्तु वा ॥५४॥

नासदी पलिअकेसु, न निसिज्जा न पीढए ।
निग्गथाऽपडिलेहाए, बुद्धवुत्तमहिट्ठगा ॥५५॥

अन्वयार्थ—(आसदी पलिअकेसु) बेंत आदि की कुर्सी और पलग पर (वा) अथवा (मचमासालएसु) खाट और आराम कुर्सी आदि पर (आसइत्तु) बैठना (वा) अथवा (सइत्तु) सोना (अज्जाण) साधुओ के लिए (अणायरिय) अनाचार रूप है इसलिए (बुद्धवुत्तमहिट्ठगा) तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का पालन करने वाले (निग्गथा) निर्ग्रन्थ मुनियो को चाहिये कि वे (न) न तो (आसदी पलिअकेसु) बेंत आदि की कुर्सी और पलग पर बैठे और सोवे और (न) न (निसिज्जा-निसेज्जा) रूई की गद्दी सहित आसन पर और (न) न (पीढए) बेंत के बने हुए आसन विशेष पर बैठे और सोवे क्योकि (अपडिलेहाए) इनकी पडिलेहणा होना कठिन है ॥५४ ५५॥

गभीर विजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ।
आसदी पलिअको य, एयमट्ठं विवज्जिया ॥५६॥

अन्वयार्थ — (एए) कुर्सी पलग आदि इन सब मे (गभीर विजया) उडे छिद्र होते हैं अत (पाणा) बेइन्द्रियादि प्राणियो की (दुप्पडिलेहगा) पडिलेहणा होना कठिन है (एयमट्ठ) अत मुनियो को (आसदी) कुर्सी (य) और (पलिअको) पलग आदि का (विवज्जिया) त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन आसनों पर सोना-बैठना न चाहिए ५६।

गोयरग्ग पविट्ठस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ।
इमेरिसमणायार, आवज्जइ अबोहिय ॥५७॥

अन्वयार्थ — (गोयरग्ग पविट्ठस्स) गोचरी गया हुआ (जस्स) जो साधु (निसिज्जा कप्पइ) गृहस्थ के घर पर बैठता है उसे (इमेरिस) अगली गाथा मे कहे जाने वाला (अणायार) अनाचार दोष लगने की सभावना रहती है, तथा (अबोहिय) मिथ्यात्व की (आवज्जइ) प्राप्ति होती है । ५७॥

विवत्ती बभचेरस्स, पाणाण च वहे वहो ।
वणीमगपडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिण ॥५८॥

अन्वयार्थ — गृहस्थ के घर बैठने से साधु के (बभचेरस्स) ब्रह्मचर्य के (विवत्ती) नाश होने की तथा (पाणाण) प्राणियो का (वहे) वध होने से (वहो) सयम दूषित होने की सभावना रहती है (वणीमगपडिग्घाओ) तथा उसी समय यदि कोई भिखारी भिक्षा के लिए आवे तो उसको भिक्षा में अन्तराय होने की सभावना रहती है (च) और साधु के चारित्र पर सदेह होने से (अगारिण) गृहस्थ (पडिकोहो) कुपित हो सकता है ।५८॥

अगुत्ती वभचेरस्स, इत्थीओ वावि सकण ।
कुसोलवड्ढण ठाण, दूरओ परिवज्जए ॥५६॥

अन्वयार्थ — गृहस्थ के घर बैठने से (वभचेरस्स) स.धु के ब्रह्मचय की (अगुत्ती) गुप्ति रक्षा नही हो सकती (वावि) और (इत्थीओ) स्त्रियो के विशेप ससर्ग से (सकण) ब्रह्मचयव्रत मे शका उत्पन्न हो सकती है । इसलिए (कुसी-लवड्ढण) कुशील को वढाने वाले (ठाण) इस स्थान को साधु (दूरओ) दूर से ही (परिवज्जए) वज दे ॥५६॥

तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ।
जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो ॥६०॥

अन्वयार्थ — (जराए अभिभूयस्स) जराग्रस्त-बुड्ढा (वाहियस्स) रोगी और (तवस्सिणो) तपस्वी (तिण्ह) इन तीन मे से (अन्नयरागस्स जस्स) किसी भी साधु को कारणवश (निसिज्जा) गृहस्थ के घर वैठना (कप्पई) कल्पता है अर्थात् शारीरिक निवलतादि के कारण यदि ये गृहस्थ के घर वैठें तो पूर्वोक्त दोपो की सभावना नही है ॥६०॥

वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाण जो उ पत्थए ।
वुक्कतो होइ आयारो, जढो हवइ सजमो ॥६१॥

अन्वयार्थ — (वा) चाहे (वाहिओ) रोगी हो (वा) अथवा (अरोगी) निरोग हो किन्तु (जो) जो साधु (सिणाण) स्नान करने की (पत्थए) इच्छा करता है (उ) तो निश्चय ही (आयारो) वह आचार से (वुक्कतो) भ्रष्ट (होइ) हो जाता है और (सजमो) उसका सयम (जढो) मलिन (हवइ) हो जाता है ॥६१॥

सतिमे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासु य ।
जे य भिक्खू सिणायतो, वियडेणुप्पलावए ॥६२॥

अन्वयार्थ — (घसासु) क्षारवाली, पोली भूमि में (य) और (भिलगासु-भिलुगासु) फटी हुई दराडों वाली भूमि मे (सुहुमा) सूक्ष्म (पाणा) प्राणी (सति) होते हैं अत यदि (भिक्खू) साधु (वियड्डेण) गरम जल से भी (सिणायतो) स्नान करेगा तो (इमे) उन सूक्ष्म जीवों को (उप्पलावए-उप्पिलावए) हिंसा हुए बिना न रहेगी ॥६२॥

तम्हा ते न सिणायति, सीएण उसिसेण वा ।
जावज्जीव वय घोर, असिणाणमहिट्ठगा ॥६३॥

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (ते) शुद्ध सयम का पालन करने वाले साधु (सीएण) ठडे जल से (वा) अथवा (उसिसेण) गरम जल से (न सिणायति) कभी भी स्नान नहीं करते किन्तु वे (जावज्जीव) जीवन पर्यन्त (असिणाण) अस्नान नामक (घोर) कठिन (वय) व्रत का (अहिट्ठगा) पालन करते हैं ॥६३॥

सिणाण अदुवा कक्क, लुद्ध पउमगाणि य ।
गायस्सुव्वट्टणट्ठाए, नायरति कयाइ वि ॥६४॥

अन्वयार्थ — सयमी पुरुष (सिणाण) स्नान (अदुवा) अथवा (कक्क) कल्क चन्दनादि सुगन्धी द्रव्य (लुद्ध) लोद (य) और (पउमगाणि) कुकुम केसर आदि सुगंधित द्रव्यों का (गायस्सुव्वट्टणट्ठाए) अपने शरीर के उबटन मर्दन के लिए (कयाइ वि) कदापि (नायरति) सेवन नहीं करते ।६४।

नगिणस्स वावि मुडस्स, दीहरोम नहसिणो ।
मेहुणा उवसतस्स, किं विभूसाइ कारिय ॥६५॥

अन्वयार्थ —(नगिणस्स) प्रमाणोपेत वस्त्र रखने वाला स्थविर कल्पी अथवा नग्न रहने वाला जिनकल्पी (मुडस्स) द्रव्य और भाव से मुण्डित (दीहरोम नहसिणो) और जिसके नख और केश बढे हुए हैं ऐसे (वावि) तथा (मेहुणा-मेहुणाओ) विपय वासना मे (उवसतस्स) सवथा उपशात साधु को (विभूसाइ विभूसाए) शरीर की शोभा एव शृङ्गार से (किं) क्या (कारियं) प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है ॥६५॥

विभूसा वत्तिय भिक्खू कम्म वधइ चिक्कण ।
ससारसायरे घोरे, जेण पडइ दुरुत्तरे ॥६६॥

अन्वयार्थ —(विभूसावत्तिय) शरीर की विभूपा एव शोभा शृङ्गार करने से (भिक्खू) साधु को (चिक्कण) ऐसे चीकने (कम्म) कर्मों का (वधइ) बध होता है (जेण) जिससे वह (घोरे) जन्म जरामरण के भय से भयकर (दुरुत्तरे) मुश्किल से पार किये जाने वाले (ससारसायरे) ससाररूपी सागर मे (पडइ) गिर पडता है ॥६६॥

विभूसावत्तिय चेय, वुद्धा मन्नति तारिस ।
सावज्जवहुल चेय, नेय ताईहिं सेविय ॥६७॥

अन्वयार्थ — (वुद्धा) ज्ञानी पुरुप (विभूसावत्तिय) शरीर की विभूपा सबधी सकल्प-विकल्प करने वाले (चेय) मन को (तारिस) चीकने कर्मबध का कारण (च) और (सावज्जवहुल) बहुत पापो के उत्पत्ति का हेतु (मन्नति) मानते हैं (एय) इसलिए (ताईहिं) छ काय जीवो के रक्षक मुनियो को (एय) शरीर की विभूपा का (न सेविय) चिन्तन भी न करना चाहिए । ६७ ।

खवति अप्पाणममोहदसिणो, तवे रया सजम अज्जवे गुणे।
धुणति पावाइ पुरेकडाइ, नवाइ पावाइ न ते करति ॥६८॥

अन्वयार्थ — (अमोहदसिणो) मोह रहित तथा तत्व के यथार्थ स्वरूप के ज्ञाता (सजम) सत्रह प्रकार के सयम को पालने वाले (अज्जवे गुणे) आर्जवता आदि गुणों मे सयुक्त तथा (तवे) बारह प्रकार के तप मे (रया) रत रहने वाले (ते) पूर्वोक्त अठारह स्थानो का यथावत् पालन करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि (पुरेकडाइ) पहले किए हुए (पावाइ) पाप कर्मो को (धुणति) क्षय कर देते हैं और (नवाइ) नवीन (पावाइ) पापकर्मों का (न करति) बध नही करते—इस प्रकार वे मुनि (अप्पाण) अपनी आत्मा म रहे हुए कषायादि मल को (खवति) सवथा क्षय कर डालते हैं ॥६८॥

सओवसता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जससिणो।
उउप्पसन्ने विमलेव चंदिमा, सिद्धि विमाणाइ उवति ताइणो॥

अन्वयार्थ — (सओवसता) सदा उपशान्त (अममा) मोह ममता रहित (अकिंचणा) निष्परिग्रही (सविज्ज विज्जाणुगया) आध्यात्मिक विद्या का अनुसरण करने वाले (जससिणो) यशस्वी तथा (उउप्पसन्ने) शरद ऋतु के स्वच्छ (चदिमा) चन्द्रमा के (इव) समान (विमला) निमल मुनि (सिद्धि) कर्मों का सवथा क्षय करके सिद्धगति को (उवेंति-उवति) प्राप्त होते हैं अथवा कुछ कर्म बाकी रहने पर (विमाणाइ) वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते हैं ॥६६॥
(त्ति बेमि) पूववत ।

'सुवाक्यशुद्धि' नामक सातवां अध्ययन

इस अध्ययन मे भाषाशुद्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है--

चउण्ह खलु भासाण परिसखाय पन्नव ।
दुण्ह तु विणय सिक्खे, दो न भासिज्जा सव्वसो ॥१।

अन्वयार्थ —(पन्नव) बुद्धिमान् साधु (चउण्ह) सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार इन चार (भासाण) भाषाओ के स्वरूप को (खलु) भली प्रकार (परिसखाय) जानकर (दुण्ह) सत्य और व्यवहार इन दो भाषाओ का (विणय) विवेकपूर्वक उपयोग करना (सिक्खे) सीखे (तु) और (दो) असत्य और मिश्र इन दो भाषाओ को (सव्वसो) सब प्रकार से (न भासिज्ज) न बोले ॥१॥

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा।
जा य बुद्धेहि नाइन्ना, न त भासिज्जा पन्नव ॥२॥

अन्वयार्थ — (जा य) जो भाषा (सच्चा) सत्य है किंतु (अवत्तव्वा) अप्रिय और अहितकारी होने से बोलने योग्य नही है (य) और (जा) जो भाषा (सच्चामोसा) सत्यामृषा-मिश्र है (य) तथा (जा) जो भाषा (मुसा) मृषा है (त) इन भाषाओ को (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) न बोलें क्योकि (बुद्धेहि) तीर्थंकर देवो ने

(नाइन्ना) इन भाषाओं को बोलने की आज्ञा नहीं दी है ॥२॥

> असच्चमोस सच्च च, अणवज्जमकक्कस ।
> समुप्पेहमसदिद्ध, गिर भासिज्ज पन्नव ॥३॥

अन्वयार्थ — (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (अणवज्ज) निर्वद्य पाप रहित (अकक्कस) कर्कशता रहित मधुर (च) और (असदिद्ध) सन्देह रहित स्पष्ट (असच्चमोस) असत्या मृषा व्यवहार भाषा और (सच्च) सत्य (गिर) भाषा को (समुप्पेह) अच्छी तरह विचार कर विवेकपूर्वक (भासिज्ज) बोले ॥३॥

> एय च अट्ठमन्न वा, ज तु नामेइ सासय ।
> स भास सच्चमोस पि, तपि धीरो विवज्जए ॥४॥

अन्वयार्थ — (एय च) सावद्य और कर्कशता युक्त (अट्ठ) अर्थ को (वा) अथवा (अन्न) इसी प्रकार के दूसरे अर्थ को प्रतिपादन करने वाली (ज तु) जो भाषा (सासय) शाश्वतसुख की (नामेइ) विघातक है अर्थात् जिस भाषा के बोलने से मोक्षप्राप्ति मे बाधा पहुचती है चाहे वह (सच्चमोस भास) सत्यामृषा-मिश्र भाषा हो अथवा (अपि च) सत्य भाषा हो (त पि) उसे (स) सत्यव्रतधारी (धीरो) बुद्धिमान् साधु (विवज्जए) वर्ज दे अर्थात् ऐसी भाषा न बोले ॥४॥

> वितह पि तहामुत्ति, ज गिर भासए नरो ।
> तम्हा सो पुट्ठो पावेण, किं पुण जो मुस वए ॥५॥

अन्वयार्थ —(नरो) जो मनुष्य (तहामुत्ति पि) बाह्य वेश के अनुसार अर्थात् स्त्री वेषधारी पुरुष को स्त्री एव

पुरुषवेश वाली स्त्री को पुरुष कहने रूप (ज) जिस (वितह) असत्य (गिर) भाषा को (भासए) बोलता है (तम्हा) इससे (सो) वह पुरुष (पावेण) पाप से (पुट्ठो) स्पष्ट होता है अर्थात् पाप का भागी होता है तो (पुण) फिर (जो) जो व्यक्ति (मुस) साक्षात् झूठ (वए) बोलता है उसका तो (किं) कहना ही क्या ? अर्थात् उसके तो पापकर्म का बंध अवश्य होता है ॥५॥

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुग वा णे भविस्सइ।
अहं वा ण करिस्सामि, एसो वा ण करिस्सइ ॥६॥
एवमाइ उ जा भासा, एसकालम्मि संकिया।
संपयाइअमट्ठे वा, तंपि धीरो विवज्जए ।७।

अन्वयार्थ — (तम्हा) इसलिए (गच्छामो) कल हम यहाँ से अवश्य चले जावेंगे (वक्खामो) अमुक बात हम उनको अवश्य कह देंगे या कल हम यहाँ पर अवश्य व्याख्यान देंगे (वा) अथवा (णे) हमारा (अमुगं) अमुक कार्य (भविस्सइ) अवश्य हो जायगा (वा) अथवा (अहं) मैं (णं) उस कार्य को (करिस्सामि) अवश्य कर दूंगा (वा) अथवा (एसो) यह व्यक्ति (ण) उस कार्य को (करिस्सइ) अवश्य कर देगा। (एवमाइ) इस प्रकार की (जाउ) जो (भासा) भाषा (एसकालम्मि) भविष्यत काल मे (संकिया) संशय युक्त हो (वा) अथवा (संपयाइअमट्ठे) इसी प्रकार की, जो भाषा वर्तमान और अतीतकाल के विषय में संशय युक्त हो (तंपि) उसे (धीरो) धैर्यवान् साधु (विवज्जए) वर्जे-अर्थात् साधु निश्चयकारी भाषा न बोले ॥६-७॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
जमट्ठ तु न जाणिज्जा, एवमेयति नो वए ॥८॥

अन्वयार्थ - (अईयम्मि) अतीतकाल (पच्चुप्पण्णं) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल सम्बन्धी (ज) जिस (अट्ठ) अर्थ को- वस्तु को (न जाणिज्जा) अच्छी तरह न जानता हो (तु) तो उसके विषय मे (एवमेयति) यह वस्तु ऐसी ही है इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले। ८॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
जत्थ सका भवे त तु एवमेय ति नो वए ॥९॥

अन्वयार्थ (अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्णं) वर्तमान कार (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल में (जत्थ) जिस वस्तु के विषय में (सका) शंका (भवे) हो (तु) तो (त) उस वस्तु के विषय में (एवमेय) यह ऐसा ही है (ति तु) इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा (नो वए) साधु न बोले ॥९॥

अईयम्मि य कालम्मि, पच्चुप्पण्णमणागए।
निस्सकिय भवे ज तु, एवमेय ति निद्दिसे ॥१०॥

अन्वयार्थ —(अईयम्मि) अतीत काल (पच्चुप्पण्णं) वर्तमान काल (य) और (अणागए) भविष्यत (कालम्मि) काल मे (ज) जो वस्तु (निस्सकिय) शंका रहित (भवे) हो (तु) तो उसके विषय में (एवमेय) यह ऐसा है (ति) इस प्रकार साधु (निद्दिसे) निरवद्य भाषा मे भाषण कर सकता है ॥१०॥

तहेव फरुसा भासा, गुरुभूग्रोवघाइणी ।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जग्रो पावस्स आगमो ।।११।

अवयार्थ --(तहेव) शकित भापा की तरह (फरुसा) कठोर (भासा) भापा भी (गुरुभूग्रोवघाइणो) बहुत प्राणियो के प्राणो का नाश करने वाली होती है अत (सा) इस प्रकार की भापा (सच्चा वि) सत्य हो तो भी साधु को (न) न (वत्तव्वा) बोलनी चाहिए (जग्रो) क्योकि इससे (पावस्स) पापकर्म का (आगमो) बन्ध होता है ।।११।।

तहेव काण काणत्ति, पडग पडगत्ति वा ।
वाहिय वावि रोगित्ति तेण चोरत्ति नो वए ।।१२।।

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (काण) काणे को (काणत्ति) काणा (वा) अथवा (पडग) नपुसक को (पडगत्ति) नपुसक (वावि) तथा (वाहिय) रोगी को (रोगित्ति) रोगी और (तेण) चोर को (चोरत्ति-चोरेत्ति) चोर (नो) न (वए) कहे अर्थात् दूसरो को दुख पहुचाने वाली सत्य भापा भी साधु को न बोलनी चाहिए ।।१२।

एएणऽन्नेण अट्ठेण, परो जेणुवहम्मइ ।
आयारभाव दोसन्नू न त भासिज्ज पन्नव ।।१३।।

अन्वयार्थ -(आयारभाव दोसन्नू) आचार एव भाव के दोषों को जानने वाला (पन्नव) विवेकी साधु (एएण) उपरोक्त (अट्ठेण) अर्थ को बतलाने वाली अथवा (अन्नेण) अन्य किसी दूसरे प्रकार की भापा (जेण) जिससे (परो) दूसरे प्राणी को (उवहम्मइ) पीडा पहुचे (त) ऐसी पर-पीडाकारी भापा (न भासिज्ज) न बोले ।।१३।

तहेव होले गोलित्ति, साणे वा वसुलित्ति य ।
दमए दुहए वावि, नेव भासिज्ज पन्नव ॥१४।

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (पन्नव) बुद्धिमान साधु (होले) रे मूर्ख ! (गोलित्ति) रे लपट (वा) तथा (साणे) रे कुत्ते ! (य) और (वसुलित्ति) रे दुराचारिन ! (वावि) अथवा (दमए) रे कगाल ! (दुहए) रे अभाग ! इत्यादि (नेव भासिज्ज) कठोर शब्दों का प्रयोग कदापि न करे ॥१४॥

अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउसियत्ति य ।
पिउस्सिए भायणिज्जत्ति, धूए णत्तुणिअ त्ति य ॥१५॥

हले हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिणि गोमिणि ।
होले गोले वसुलित्ति, इत्थिअं नेवमालवे ॥१६॥

अन्वयार्थ — (अज्जिए) हे दादी ! या हे नानी ! (वावि) अथवा (पज्जिए) हे परदादी ! या हे परनानी ! (अम्मो) हे माँ ! (य) और (माउसियत्ति) हे मौसी ! (पिउस्सिए) हे भूवा ! (भायणिज्ज त्ति) हे भाणजी ! (धूए) हे पुत्री ! (य) और (णत्तुणिअत्ति) हे दोहिती ! या हे पोती ! (हले हलित्ति) हे सखी ! (अन्नित्ति) हे अन्ने ! (भट्टे) हे भट्टे ! (सामिणी) हे स्वामिनि ! (गोमिणि) हे गोमिनि गवालिन् (होले) हे मूर्खे ! (गोले) हे गोली ! (वसुलित्ति) हे दुराचारिणि ! (एव) इत्यादि निन्दित सबोधनों से सबोधित करके (इत्थिअं) किसी भी स्त्री को साधु (न आलवे) न बोलावे ॥१५-१६।

णामधिज्जेण ण बूआ, इत्थीगुत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥१७॥

अन्वयार्थ — (णं) उस स्त्री का (णामधिज्जेण) जो प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुणो) अथवा (इत्थीगुत्तेण) उस स्त्री का जो गोत्र हो उस गोत्र से संबोधित करके (बूआ) बोले तथा (जहारिहं) यथायोग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके (आलविज्ज) एक बार बोले (वा) अथवा (लविज्ज) बार-बार बोले ।१७।

अज्जए पज्जए वावि, बप्पो चुल्लपिउत्ति य ।
माउलो भाइणिज्ज त्ति, पुत्ते णत्तुणिअ त्ति य ॥१८॥

हे भो हलित्ति अन्नित्ति, भट्टे सामिअ गोमिअ ।
होल गोल वसुलि त्ति, पुरिस नेवमालवे ॥१९॥

अन्वयार्थ — (अज्जए) हे दादा या हे नाना ! (वावि) अथवा (पज्जए) हे परदादा या हे परनाना ! (बप्पो) हे पिता ! (य) और (चुल्लपिउ त्ति) हे चाचा ! (माउलो) हे मामा ! (भाइणिज्जत्ति) हे भानजे ! (पुत्ते) हे पुत्र ! (य) और (णत्तुणिअ त्ति) हे दोहिता ! हे पोता ! (हे हलित्ति) रे सखे ! (भो अन्नित्ति) रे अन्न ! (भट्टे-भट्टा) रे भट्ट (सामिअ) हे स्वामिन् ! (गोमिय) रे गोमिन् गाय वाले (होल) रे मूर्ख ! (गोल) रे लपट ! (वसुलित्ति) रे दुराचारिन् (एव) इत्यादि निन्दित एवं अपमानजनक सम्बोधनों से (पुरिस) किसी भी पुरुष को सम्बोधित न करे ॥१८-१९॥

णामधिज्जेण ण बूआ, पुरिसगुत्तेण वा पुणो ।
जहारिहमभिगिज्झ, आलविज्ज लविज्ज वा ॥२०।

अन्वयार्थ —(ण) उस पुरुष का (णामधिज्जेण) जो

प्रसिद्ध नाम हो उस नाम से (वा पुगो) अथवा (पुरिस गुत्तेण) उस पुरुष का जो गोत्र हो उस गोत्र से सम्बोधित कर (बूया) बोले (वा) अथवा (जहारिहं) यथायोग्य गुण अवस्था आदि का (अभिगिज्झ) निर्देश करके (आलविज्ज) एक बार बोले अथवा आवश्यकतानुसार (लविज्ज) बार बार बोले ॥२०॥

पंचिदिआण पाणाण एस इत्थी अय पुम ।
जाव ण न विज्जाणिज्जा, ताव जाइ त्ति आलवे ॥२१॥

अन्वयार्थ —(पंचिदिआण) पचेन्द्रिय (पाणाण) प्राणी गाय, भैंस, घोडा आदि के विषय में (जाव) जब तक (एस) यह (इत्थी) गाय, भैंस, घोडी आदि है अथवा (अय) यह (पुम) बैल भैंसा, घोडा आदि है (ण) इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग आदि का ठीक-ठीक रूप से (न विज्जाणिज्जा) निश्चय न हो जाय (ताव) तब तक (जाइ) यह गोजाति है, अश्वजाति है (त्ति) इस प्रकार (आलवे) साधु बोले ॥२१॥

तहेव माणुस पसु, पक्खि वावि सरीसव ।
थूले पमेइले वज्झे, पायमित्ति य नो वए ॥२२॥

अन्वयार्थ— (तहेव) इसी प्रकार (माणुस) मनुष्य (पसु) पशु (पक्खि) पक्षी (वावि) अथवा (सरीसव) सर्प आदि को देखकर (थूले) यह बडा मोटा-ताजा है (पमेइले) यह बडी तोंद वाला है इसके शरीर में चर्बी बहुत बढ़ी हुई है (वज्झे) यह शस्त्र द्वारा मार देने योग्य है (य) अथवा (पाय) अग्नि में पकाने योग्य है (इति) इस प्रकार परपीडाकारी वचन साधु को (नो) नही (वए) बोलना चाहिए ॥२२।

परिवूढत्ति ण वूआ, वूआ उवचिअ त्ति य ।
सजाए पीणिए वावि, महाकाय त्ति आलवे ॥२३॥

अन्वयार्थ — (ण) यदि स्त्री-पुरुष के विपय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (परिवूढ परिवूड्ढे) यह सामर्थ्यवान् है अथवा यह सव प्रकार से वृद्ध है (त्ति) इस प्रकार (वूआ) बोलना चाहिए (य) अथवा (उवचिअ-उवचिए) यह स्वस्थ एव पुष्ट शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार (वूआ) बोलना चाहिए (वावि) अथवा (सजाए) यह पूरा अ ग-उपाग वाला है (पीणिए) यह प्रसन्न एव निष्फिक्र है तथा (महाकाय) यह वडे शरीर वाला है (त्ति) इस प्रकार आवश्यकता पडने पर (आलवे) साधु वोल सकता है ॥२३ ।

तहेव गाओ दुज्झाओ, दम्मा गोरहगत्ति य ।
वाहिमा रहजोगित्ति, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२४॥

अन्वयार्थ — (तहेव) जिस प्रकार मनुष्य आदि के विपय मे सावद्य भापा न वोलनी चाहिए उसी प्रकार पशुओ के लिए भी सावद्य भापा न वोलनी चाहिए यथा (गाओ) ये गायें (दुज्झाओ) दुहने योग्य हैं अर्थात् इन गायो के दूध निकालने का समय हो गया है (य) तथा (गोरहगत्ति) ये वछडे अव (दम्मा) दमन करने योग्य है अर्थात् नाथने योग्य हैं अथवा वधिया खसी करने के लायक हैं (वाहिमा) हलादि मे जोतने योग्य हैं और (रहजोगित्ति) रथ मे जोतने योग्य हैं (एव) इस प्रकार (पन्नव) वुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) सावद्य भापा न वोले ॥२४॥

जुव गविति ण बूआ, धणु रसदयत्ति य।
रहस्से महल्लए वावि, वए सवहणित्ति य ॥२५॥

अन्वयार्थ — (ण) गाय-बैल आदि के विषय में यदि बोलने की आवश्यकता हो तो (गविति) यह बैल (जुव) जवान है (य) और (धणु) यह गाय (रसदय) दुधारु है (ति) इस प्रकार (बूआ) बोले (वावि) अथवा (रहस्स) यह बछडा छोटा है (महल्लए) यह बैल बडा है (य) तथा (सवहणित्ति) यह बैल धोरी है अर्थात् उठाये हुए भार को पार पहुचाने वाला है इस प्रकार (वए) निर्दोष वचन बोल सकता है ॥२५॥

तहेव गतुमुज्जाण पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२६॥

अल पासायखभाण, तोरणाण गिहाण य।
फलिहऽग्गल नावाण, अलं उदग-दोणिणं ॥२७॥

अन्वयार्थ —(तहेव) जिस प्रकार पशु आदि के लिए सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार वृक्ष आदि के विषय में भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए (उज्जाणं) बगीचे (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वन के अन्दर (गंतु) जाकर वहाँ (महल्ल) विशाल (रुक्खा) वृक्षों को (पेहाए) देखकर (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (एव) इस प्रकार (न भासिज्ज) न बोले कि ये वृक्ष (पासायखभाणं) महल के खंभों के लिए (तोरणाण तोरणाणि) नगर के दरवाजे बनाने के लिए (य) और (गिहाण गिहाणि) झोंपडी आदि बनाने के लिए (अल) योग्य हैं तथा (फलिहऽग्गल नावाणं) परिघ-भोगल, आगल और नाव बनाने के लिए

तथा (उदगदोणिण) जलपात्र अथवा छोटी नौका बनाने के लिये (अल) योग्य हैं ॥२६-२७।

पीढए चंगबेरे य, नगले मइय सिया।
जंतलट्ठी व नाभी वा, गडिआ व अल सिया ॥२८॥

आसण सयणजाण, हुज्जा वा किंचुवस्सए।
भूओवघाइणि भासं, नेव भासिज्ज पन्नव ॥२६॥

अन्वयार्थ — ये वृक्ष (पीढए) बाजोट (चगबेरे रा) कठौती (नगले, हल की मूठ (य) और (मइय) जोते हुए खेत को बराबर करने के लिए फिराये जाने वाले मेडे के लिए (अल) योग्य (सिया) है (व) अथवा (जतलट्ठी) कोल्हू आदि यन्त्रो के लाठ (वा) अथवा (नाभी) गाडी के पहिये की नाभी (व) अथवा (गडिया) सुनार की एरण रखने का लकडी का ढाचा बनाने के लिए (अलं) योग्य (सिया) हैं (आसण) कुर्सी, पाटा आदि बैठने का आसन (सयण) सोने के लिए बडा पाटा या खाट (वा) अथवा (जाण) रथ एव पालकी (किंच) और (उवस्सए) उपाश्रय के किवाड़ आदि बनाने के लिए (हुज्जा) योग्य हैं (एव) इस प्रकार (भूओवघाइणि) एकेंद्रियादि प्राणियो की घात करने वाली एव परपीडाकारी (भाम) भापा (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (न भासिज्ज) कदापि न बोले ॥२८-२६॥

तहेव गतुमुज्जाण पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए, एव भासिज्ज पन्नव ॥३०॥

जाइमता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया।
पयायसाला विडिमा, वए दरिसणित्ति य ॥३१॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (उज्जाण) उद्यान (पव्वयाणि) पर्वत (य) और (वणाणि) वनादि के अन्दर (गतु) गया हुआ (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (महल्ल) बड़े बड़े (रुक्खा) वृक्षो को (पेहाए) देखकर यदि उनके विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो (एव) इस प्रकार (भासिज्ज, वए) निरवद्य वचन कह सकता है कि (इमे) ये (रुक्खा) वृक्ष (जाइमता) उत्तम जाति के (दीहवट्टा) बहुत लबे गोलाकार (महालया) बहुत विस्तार वाले (पयायसाला) बडी बडी शाखा (य) और (विडिमा वडिमा) प्रति शाखाओ से युक्त हैं अतएव (दरिसणित्ति) सुन्दर एव दर्शनीय है ॥३० ३१॥

तहा फलाइ पक्काइ, पायखज्जाइ नो वए ।
वेलोइयाइ टालाइ, वेहिमाइ त्ति नो वए ॥३२॥

अन्वयार्थ — (तहा) जिस प्रकार वृक्षों के विषय में सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए उसी प्रकार फलो के विषय मे भी सावद्य भाषा न बोलनी चाहिए, जैसे कि (फलाइ) ये फल (पक्काइ) स्वत पककर तैयार हो गये है तथा (पायखज्जाइ) पकाकर खाने योग्य है (नो वए) इस प्रकार साधु न बोले और (वेलाइयाइ) ये फल अधिक पके हुए हैं इसलिए अभी खाने योग्य हैं (टालाइ) अथवा बहुत कोमल हैं एव अभी तक इनमें गुठली भी नही पडी है इसलिए (वेहिमाइ) चाकू मे काटकर दो टुकडे करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार भी (नो वए) न बोले ॥३२॥

असथडा इमे अवा, बहुनिव्वडिमाफला ।
वइज्ज बहुसभूआ, भूअरूवत्ति वा पुणो ॥३३॥

गया (सुलट्ठित्ति) अमुक मुनि की क्रिया बहुत सुन्दर है— इस प्रकार साधु को निरवद्य भाषा बोलनी चाहिए ॥४१।

पयत्तपक्कत्ति व पक्कमालवे, पयत्तछिन्नत्ति व छिन्नमालवे ।
पयत्तलट्ठित्ति व कम्महेउय, पहारगाढत्ति व गाढमालवे ॥४२॥

अन्वयार्थ — यदि कदाचित् इनके विषय मे बोलना पडे तो (पक्क) पकाये हुए शतपाक-सहस्रपाक तलादि पदार्थों के विषय मे (पयत्तपक्कत्ति-पक्किात्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूवक पकाया गया है इस प्रकार (आलवे) बोले (व) तथा (छिन्न) काटे हुए वनादि के विषय मे (पयत्तछिन्नत्ति) यह बडे प्रयत्न से आरम्भपूवक काटा गया है इस प्रकार (आलवे) बोले (व) और (पयत्तलट्ठित्ति) कन्या के विषय मे यह कन्या सभालपूर्वक लालन-पालन की हुई है अथवा यदि यह कन्या दीक्षा ले तो सयम की क्रियाओं का सुन्दर रीति से पालन कर सकती है इस प्रकार बोले (व) अथवा (कम्महेउय) शृङ्गारादि क्रियाओ के विषय में ऐसा कहे कि ये शृङ्गारादि क्रियाए कर्मबन्ध का कारण हैं (व) अथवा (गाढ पहारगाढत्ति) यह घाव बहुत गहरा है इस प्रकार (आलवे) निरवद्य वचन कहे ।४२।

सव्वुक्कस परग्घ वा, अउल नत्थि एरिस ।
अविक्किअमवत्तव्व, अचियत्त चेव नो वए ॥४३॥

अन्वयार्थ — किसी गृहस्थ के साथ वार्तालाप करने का प्रसग आ जाय तो (सव्वुक्कस) यह वस्तु सबसे उत्कृष्ट है, (वा) अथवा (परग्घ) अधिक मूल्य वाली है (अउल) अनुपम है (एरिस) इसके समान दूसरी कोई वस्तु (नत्थि)

नहीं है (अविक्किअं) यह वस्तु अभी बेचने योग्य नहीं है (अवत्तव्व) इसमे इतने गुण हैं कि वे कहे नहीं जा सकते (चेव) और (अचियत्त) यह वस्तु बहुत गन्दी है (ना वए) इस प्रकार साधु न कहे ॥४३॥

सव्वमेय वइस्सामि, सव्वमेय ति नो वए ।
अणुवीइ सव्व सव्वत्थ, एव भासिज्ज पन्नव ॥४४॥

अन्वयार्थः— (एय) तुम्हारा कहा हुआ यह (सव्व) सब सन्देश (वइस्सामि) मैं उससे ठीक इसी तरह कह दूंगा तथा (एय) उसका सारा कथन (एव) ऐसा ही है (ति) इस प्रकार (पन्नव) विवेकी साधु (नो वए) नहीं बोले किन्तु (सव्वत्थ) सब जगह (सव्व) सब बात (अणुवीइ) बहुत सोच विचार कर जिस तरह मृषावाद का दोष न लगे उस तरह से (भासिज्ज) बोले ॥४४॥

सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकिज्ज किज्जमेव वा ।
इम गिण्ह इम मुच, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

अन्वयार्थ — (सुक्कीय) तुमने अमुक माल खरीद लिया सो अच्छा किया (वा) अथवा (सुविक्कीय) तुमने अमुक माल बेच दिया सो ठीक किया (अकिज्ज) यह वस्तु खरीदने योग्य नहीं है (वा) अथवा (किज्जमेव) यह वस्तु खरीदने योग्य है (इम) यह (पणीय) वस्तु किराना इस समय (गिण्ह) ले लो खरीद लो क्योंकि इसमें लाभ होगा (इम) इस समय यह वस्तु (मुच) बेच डालो-क्योंकि आगे जाकर इसमें नुकसान होगा (नो वियागरे) इस प्रकार साधु को नहीं कहना चाहिए ॥४५॥

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा ।
पणिअट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्ज वियागरे ॥४६॥

अन्वयार्थ — (अप्पग्घे) अल्पमूल्य वाले (वा) अथवा (महग्घे वा) बहुमूल्य वाले पदार्थ को (कए वा) खरीदने के विषय मे (वि वा) अथवा (विक्कए) बेचने के विषय मे यदि कभी (पणिअट्ठे) व्यापार सम्बन्धी प्रसङ्ग (समुप्पन्ने) उपस्थित हो जाय तो साधु (अणवज्ज) निरवद्य वचन (वियागरे) बोले अर्थात् ऐसा कहे कि व्यापार-वाणिज्य के विषय मे बोलने का साधुओं को कोई प्रयोजन नही है ॥४६॥

तहेवासजय धीरो, आस एहि करेहि वा ।
सय चिट्ठ वयाहीत्ति, नेव भासिज्ज पन्नव ॥४७॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (धीरो) धैर्यवान् और (पन्नव) बुद्धिमान् साधु (असजय) गृहस्थ के प्रति (आस) यहाँ बैठो (एहि) इधर आओ (वा) अथवा (करेहि) यह काम करो (सय) यहाँ सो जाओ (चिट्ठ) यहाँ खड रहो (वयाहीत्ति) यहाँ से चले जाओ (एव) इस प्रकार (न भासिज्ज) न बोले ॥४७॥

बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चति साहुणो ।
न लवे असाहु साहुत्ति, साहु साहुत्ति आलवे ॥४८॥

अन्वयार्थ — (लोए) लोक मे (इमे) ये (बहवे) बहुत से (असाहू) असाधु भी (साहुणो) साधु (वुच्चति) कहे जाते हैं-किन्तु बुद्धिमान् साधु (असाहु) असाधु को (साहुत्ति) साधु (न लवे) न कहे किन्तु (साहु) साधु को

ही (साहुत्ति) साधु (आलवे) कहे ॥४८॥

> नाणं दंसणं संपन्नं, संजमे य तवे रयं।
> एवं गुणसमाउत्तं, संजयं साहुमालवे ॥४९॥

अन्वयार्थ — (नाण दंसण संपन्न) सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन से युक्त (संजमे) सत्रह प्रकार के संयम में (य) और (तवे) बारह प्रकार के तप में (रयं) अनुरक्त (एवं) इस प्रकार के (गुणसमाउत्तं) गुणों से युक्त (संजयं) साधु को ही (साहु) साधु (आलवे) कहना चाहिए ॥४९॥

> देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे।
> अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउ, त्ति नो वए ॥५०॥

अन्वयार्थ — (देवाणं) देवताओं के (च) तथा (मणुयाणं) मनुष्यों के (च) और (तिरियाणं) तिर्यंचों में पशु पक्षियों के (वुग्गहे) पारस्परिक युद्ध में (अमुयाणं अमुगाणं) अमुक पक्ष की (जओ) जीत (होउ) हो (वा) और (मा होउ) अमुक पक्ष की जीत न हो (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले ॥५०॥

> वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा।
> कया णु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

अन्वयार्थ — शीत-तापादि से पीडित होकर साधु (वाओ) वायु (च) और (वुट्ठं) वृष्टि (सीउण्हं) ठंड और गर्मी (खेमं) रोगादि की शान्ति (धायं) धान्य की अच्छी फसल (सिवं ति) सुख शान्ति (एयाणि) ये सब (कया णु) कब (हुज्ज) होंगे ? (वा) अथवा (मा होउ) ये सब बातें न हों (त्ति) इस प्रकार (नो वए) न कहे ॥५१॥

अन्वयार्थ — प्रयोजन पडने पर साधु (वइज्ज) इस प्रकार निरवद्य भाषा बोल सकता है कि (इमे) ये (अवा) आम्रवृक्ष (असथडा) फलो का भार उठाने मे असमर्थ हैं अथवा इन आम्रवृक्षो मे बहुत से फल लगे हैं जिनके बोझ से झुककर ये नम्र बन गये है (बहुनिव्वडिमाफला) ये वृक्ष बहुत से फलो के गुच्छो से युक्त है (वा) अथवा (बहुसभूआ) इस बार बहुत अधिक फल लगे हैं (पुणो) अथवा (भूअरूवत्ति) बहुत फल लगने से ये वृक्ष बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं ॥३३॥

तहेवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइ य ।
लाइमा भज्जिमाउ त्ति, पिहुखज्ज त्ति नो वए ॥३४॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (ओसहिओ) ये शालि, गेहू आदि धान्य (पक्काओ) पक चुके हैं अत (लाइमा) अब ये काट लेने योग्य हैं। (य) तथा (नीलियाओ छवीइ) ये चँवले आदि की फलियाँ नीली एव कोमल है अत (भज्जिमाउत्ति) कडाही मे डाल कर भूनने योग्य हैं अथवा (पिहुखज्ज) होला बना कर अग्नि मे सेक कर खाने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार साधु (नो वए) न बोले ॥३४॥

रूढा बहुसभूआ, थिरा ओसढा वि य ।
गब्भिआओ पसुआओ ससाराउ त्ति आलवे ॥३५॥

अन्वयार्थ — यदि धान्यादि के विषय मे बोलने की आवश्यकता हो तो साधु (आलवे) इस प्रकार निरवद्य वचन बोल सकता है कि (रूढा) इन शालि, गेहू आदि धान्यों

के अकुरे निकल आये हैं (बहुसभूया) बहुत अकुर फूट निकले हैं तथा ये पत्तो से युक्त हो गये हैं (य) तथा (थिरा) स्थिर हो गये हैं (वि) और (ओसढा) धान्य बढकर ऊपर आ गये हैं (गब्भिआओ) अभी तक इन मे सिट्टे नहीं निकले है (पसूआओ) अब इन मे प्राय सिट्टे निकल आये हैं (ससाराउत्ति) इन सिट्टो मे दाने पड गये हैं ॥३५॥

> तहेव सखडि नच्चा किच्च कज्जति नो वए।
> तेणग वावि वज्झित्ति सुतित्थित्ति य आवगा ॥३६॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (सखडि) गृहस्थ के घर जीमनवार को (नच्चा) जानकर (किच्च) यह कार्य (कज्ज) करना ही चाहिए (वावि) अथवा (तेणग) चोर को देखकर (वज्झित्ति) यह मार देने योग्य है (य) और (आवगा) नदियो को देखकर (सुतित्थित्ति) ये भली प्रकार से तैरने योग्य हैं अथवा जलक्रीडा करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले ॥३६॥

> सखडि सखडि बूआ, पणिअट्ठ त्ति तेणग।
> बहुसमाणि तित्थाणि आवगाण वियागरे ॥३७॥

अन्वयार्थ — जीमनवार आदि के विषय मे बोलना पडे तो (सखडि) जीमनवार को (सखडि) जीमनवार बहुत जीवो का उपघातपूर्वक होने वाला आरम्भ समारम्भ (बूआ) कहे (तेणग) चोर के विषय में (पणिअट्ठ) अपने प्राणों को कष्ट में डालकर भी धन के [illegible] करने वाला है (त्ति) इस प्रकार कहे त[illegible] नदियों के (तित्थाणि) किनारे (ब[illegible] इस प्रकार (वियागरे [illegible] भाषा

तहा नईओ पुण्णाओ, कायतिज्ज त्ति नो वए ।
नावाहिं तारिमाउत्ति, पाणि पिज्ज त्ति नो वए ॥३८॥

अन्वयार्थ – (तहा) इसी तरह (नईओ) वे नदियाँ (पुण्णाओ) जल से पूर्ण भरी हुई हैं अत (कायत्तिज्ज) भुजाओ से तैरने योग्य है (त्ति) इस प्रकार (नो वए) साधु न बोले अथवा (नावाहिं) ये नदियां नावो से (तारिमाउ) पार करने योग्य हैं (त्ति) इस प्रकार तथा (पाणिपिज्ज) प्राणी इसके तट पर से ही सुखपूर्वक पानी पी सकते हैं (त्ति) इस प्रकार भी (नो वए) न बोले ।३८।।

बहुवाहडा अगाहा, बहुसलिलुप्पिलोदगा ।
बहुवित्थडोदगा आवि, एव भासिज्ज पन्नव ।।३६।।

अन्वयार्थ — यदि कदाचित् इन के विषय मे बोलना ही पडे तो (बहुवाहडा) ये नदियाँ जल से लबालब भरी हुई हैं (अगाहा) ये नदियाँ अगाध जल वाली हैं (बहुसलिलुप्पिलोदगा) इन नदियो का जल तरङ्गों से बहुत उछल रहा है (आवि) और (बहुवित्थडोदगा) इन नदियो का जल बहुत विस्तारपूर्वक बह रहा है। (एव) इस प्रकार (पन्नग) बुद्धिमान् साधु (भासिज्ज) निरवद्य भाषा बोले ॥३६॥

तहेव सावज्ज जोग, परस्सट्ठा अ निट्ठिय ।
कीरमाण ति वा नच्चा, सावज्ज, न लवे मुणी ॥४०॥

अन्वयार्थ — (तहेव) उसी तरह (परस्सट्ठा) दूसरे के लिए (निट्ठिय) भूत काल मे किये गये (अ) और (कीरमाण) वर्तमान काल में किये जाने वाले (वा) अथवा

भविष्यत् काल मे किये जाने वाले (सावज्ज) पापयुक्त (जोग) जोग को-काय को (नच्चा) जानकर (मुणी) मुनि (त्ति) यह कार्य अच्छा किया इस प्रकार (सावज्ज) सावद्य भाषा (न लवे) न बोले ॥४०॥

> सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।
> सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज, वज्जए मुणी ॥४१॥

अन्वयार्थ — (सुकडित्ति) यह प्रीतिभोज आदि कार्य अच्छा किया अथवा यह सभाभवन आदि अच्छा बनवाया (सुपक्कित्ति) शतपाक सहस्रपाक आदि तेल अच्छा पकाया (सुछिन्ने) यह भयंकर वन काट दिया सो अच्छा किया (सुहडे) इस कजूस का धन चोर चुरा ले गये सो अच्छा हुआ (मडे) वह दुष्ट मर गया सो अच्छा हुआ (सुनिट्ठिए) इस धनाभिमानी का धन नष्ट हो गया सो बहुत ठीक हुआ (सुलट्ठित्ति) यह कन्या हृष्ट-पुष्ट अवयव वाली नवयौवना एव सुन्दर है अत विवाह करने योग्य है इस प्रकार (मुणी) मुनि (सावज्ज) सावद्य वचन (वज्जए) वर्ज देना चाहिये किन्तु इस प्रकार निरवद्य वचन बोले कि (सुकडित्ति) इस मुनि ने वृद्ध मुनियो की वैयावच्च एव सेवा शुश्रूषा अच्छी की (सुपक्कित्ति) इस मुनि ने ब्रह्मचर्य व्रत का अच्छा पालन किया है (सुच्छिन्ने) अमुक मुनि ने सांसारिक स्नेह-बन्धनों को अच्छी तरह काट दिया है (सुहडे) यह मुनि उपसर्ग के समय में भी ध्यान में खूब दृढ़ रहा अथवा इस तपस्वी मुनि ने उपदेश द्वारा शिष्य का अज्ञान दूर कर दिया (मडे) अमुक मुनि को अच्छा पण्डितमरण प्राप्त हुआ (सुनिट्ठिए) अच्छा हुआ इस अप्रमादी मुनि के सब कर्मों का नाश हुआ

तहेव मेहं व नहं व माणवं, न देव देवत्ति गिरं वइज्जा ।
समुच्छिए उन्नए वा पओए, वइज्ज वा वुट्ठ बलाहय त्ति ॥५२॥

अन्तलिक्ख त्ति णं बूया, गुज्झाणुचरिअ त्ति य ।
रिद्धिमंतं नरं दिस्स, रिद्धिमंत ति आलवे ॥५३॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (मेहं) मेघ को (व) अथवा (नहं) आकाश को (व) अथवा (माणवं) राजा आदि को देखकर (देव देव) यह देव है (त्ति) इस प्रकार का (गिरं न वइज्जा) वचन साधु न बोले किन्तु यदि प्रयोजन पडे तो मेघ के प्रति (समुच्छिए) यह मेघ ऊचा चढ रहा है (वा) अथवा (उन्नए) यह मेघ उन्नत है (वा) अथवा (पओए) यह मेघ जल से भरा हुआ है अथवा (वुट्ठ बलाहय) यह मेघ बर्ष चुका है (त्ति) इस प्रकार अदूषित वचन (वइज्ज) कहे और (णं) आकाश के प्रति (अतलिक्ख) यह अन्तरिक्ष है (य) अथवा (गुज्झाणुचरिअ) देवो के आने जाने का मार्ग है (त्ति) इस प्रकार (बूया) कहे (रिद्धिमंतं) किसी सम्पत्तिशाली (नरं) मनुष्य को (दिस्स) देखकर (रिद्धिमंत) यह सम्पत्तिशाली है (ति) इस प्रकार (आलवे) कहे ॥५२-५३॥

तहेव सावज्जणुमोअणी गिरा ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।
से कोह लोह भय हास माणवो, न हासमाणो वि गिरं वइज्जा ५४

अन्वयार्थ —(तहेव) इसी प्रकार (जा) जो (गिरा) भाषा (सावज्जणुमोअणी) सावद्य पाप कर्म का अनुमोदन करने वाली हो (ओहारिणी) निश्चयकारी हो (य) और (परोवघाइणी) प्राणियो का उपघात करने वाली एव दूसरो

को पीडा पहुचाने वाली हो (से) ऐसी (गिर) भाषा (माणवो) साधु (कोहलोह भय हास) क्रोध, लोभ, भय और हास्य के वश होकर (हासमाणो वि) हसी-मजाक में भी न (वइज्जा) न बोले ॥५४॥

सुवक्कसुद्धि समुपेहिया मुणी, गिर च दुट्ठ परिवज्जए सया।
मिय अदुट्ठ अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहुई पससण ॥५५॥

अन्वयार्थ.— (मुणी) जो मुनि (सुवक्कसुद्धि-सवक्क सुद्धि) वाक्य की शुद्धि को (समुपेहिया) भलीभांति समझ कर (दुट्ठ) मृषावादादि दोषयुक्त (गिर) भाषा को (सया) हमेशा (परिवज्जए) छोड देता है और (अणुवीइ) सोच विचार कर (मिय) परिमित (च) और (अदुट्ठ अदुष्ट) निरवद्य वचन (भासए) बोलता है वह साधु (सयाणमज्झे) सत्पुरुषों के बीच मे (पससण) प्रशंसा (लहुई) प्राप्त करता है ॥५५॥

भासाइ दोसे य गुणे य जाणिया, तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु सजए सामणिए सया जए, वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिय ५६

अन्वयार्थ — (छसु) छ काय जीवों की (सजए) रक्षा करने वाला (सामणिए) चारित्र धर्म मे (सया) सदा (जए) उद्यम करने वाला (बुद्धे) बुद्धिमान् साधु (भासाइ) भाषा के (दोसे) दोषों को (य) और (गुणे) गुणों को (जाणिया) जानकर (तीसे) भाषा के (दुट्ठे) दोषों को (सया) सदा (परिवज्जए) त्याग दे (य) और (हिय) सब प्राणियों के हितकारी (य) तथा (अणुलोमिय) सब प्राणियों के अनुकूल भाषा (वइज्ज) बोले ॥५६॥

परिक्खभासी सुसमाहिइदिए, चउक्कसायावगए अणिस्सिए ।
से निद्धुणे धुन्नमल पुरेकड, आराहए लोगमिण तहा पर ।५७।
(त्ति वेमि)

अन्वयार्थ — (परिक्खभासी) भाषा के गुण-दोषो का विचार करके बोलने वाला (सुसमाहि इदिए) सब इन्द्रियो को वश मे रखने वाला (चउक्कसायावगए) क्रोधादि चार कषायो से रहित (अणिस्सिए) सासारिक प्रतिवन्धों से मुक्त (से) भाषा समिति का आराधक मुनि (पुरेकड) पूर्व उपार्जित (धुन्नमल धुत्तमल) कर्मरूपी मैल को (निद्धुणे) नष्ट करके (इण) इस लोक (तहा) तथा (पर लोग) पर-लोक दोनो की (आराहए) सम्यक् आराधना कर लेता है अर्थात् सिद्ध गति को प्राप्त हो जाता है ।।५७।। (त्ति वेमि) पूर्ववत् ।

'आचार प्रणिधि' नामक आठवाँ अध्ययन

आयारप्पणिहिं लद्धुं, जहा कायव्व भिक्खुणा ।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥१॥

अन्वयार्थ — श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को कहते हैं कि– हे आयुष्मन् शिष्य ! (आयारप्पणिहिं) सदाचार के भण्डार स्वरूप साधुत्व को (लद्धुं) प्राप्त करके (भिक्खुणा) साधु को (जहा) जिस प्रकार (कायव्व) आचरण करना चाहिए (तं) उसकी विधि (मे) मैं (भे) तुमसे (उदाहरिस्सामि) कहूंगा सो तुम (आणुपुव्विं) अनुक्रम से (सुणेह) सावधान होकर सुनो ॥१॥

पुढविदग अगणिमारुय, तणरुक्खस्स बीयगा ।
तसा य पाणा जीव त्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥२॥

अन्वयार्थ — (पुढवि) पृथ्वीकाय (दग) अप्काय (अगणि) तेउकाय (मारुय) वायुकाय तथा (तणरुक्खस्स बीयगा) तृण वृक्ष और बीज रूप वनस्पतिकाय (य) और (तसा पाणा) त्रस प्राणी ये सब (जीव त्ति) जीव हैं (इइ) इस प्रकार (महेसिणा) भगवान् महावीर स्वामी ने (वुत्तं) फरमाया है ॥२॥

तेसिं अच्छण जोएण, निच्चं होयव्वयं सिया ।
मणसा कायवक्केण, एवं हवइ संजए ॥३॥

अन्वयार्थ — मुनि को (मणसा) मन (कायवक्केण) वचन और काया से (निच्च) निरन्तर (तेंसि) पूर्वोक्त छ काय जीवो के साथ (अच्छणजोएण) अहिंसा का (होयव्वय सिया) वर्ताव करना चाहिये (एव) ऐसा करने से ही (सजए) वह मुनिपद के योग्य (हवइ) होता है ॥३॥

पुढवि भित्ति सिल लेलु, नेव भिंदे न सलिहे।
तिविहेण करणजोएण, सजए सुसमाहिए ॥४॥

अन्वयार्थ (सुसमाहिए) चारित्र की आराधना मे सावधान समाधिवत (सजए) मुनि (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (भित्ति) भीत को (सिल) शिला को (लेलु) मिट्टी के ढेले को (तिविहेण करण जोएण) तीन करण तीन योग से अर्थात् मन वचन काया द्वारा करना कराना अनुमोदना रूप से (नेव) न तो (भिंदे) भेदे-टुकडा करे और (न सलिहे) न घिसे अर्थात् उन पर लकीर न खीचे ॥४॥

सुद्ध पुढवी न निसीए, ससरक्खम्मि य आसणे।
पमज्जित्तु निसीइज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गह ॥५॥

अन्वयार्थ - (सुद्ध पुढवी) शस्त्र से अपरिणत सचित्त पृथ्वी पर (य) और (ससरक्खम्मि) सचित्त रज से भरे हुए (आसणे) आसनादि पर (न निसीए) मुनि न बैठे किन्तु यदि अचित्त भूमि हो तो (जस्स) उसके स्वामी का (उग्गह) आज्ञा (जाइत्ता) लेकर (पमज्जित्तु) रजोहरण से पूजकर (नीसीइज्जा) बैठे ॥५॥

सीओदग न सेविज्जा, सिलावुट्ठ हिमाणि य।
उसिणोदग तत्तफासुय, पडिगाहिज्ज सजए ॥६॥

अन्वयार्थ — (सुजए) साधु (सीग्रोदगं) नदी, कुए, तालाव आदि के सचित्त जल (सिला) ओले-गडे (वुट्ठ) वरसात का जल (य) और (हिमाणि) बर्फ इन सब का (न सेविज्जा) सेवन न करे किन्तु (तत्तफासुय) तप्त प्रासुक (उसिणोदगं) उष्ण जल एवं प्रासुक धोवन पानी को ही (पडिगाहिज्ज) ग्रहण करे ॥६॥

उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुंछे न संलिहे।
समुप्पेह तहाभूयं, नो णं संघट्टए मुणी ॥७॥

अन्वयार्थ — किसी आवश्यक काय के लिए बाहर गये हुए मुनि का (अप्पणो) अपना (कायं) शरीर (उदउल्लं) यदि कदाचित वरसात पड़ने से भीग जाय तो अप्काय के जीवों की रक्षा के लिए (मुणी) मुनि (णं) अपने शरीर को (न पुंछे) न तो वस्त्रादि से पोंछे और (नेव संलिहे) न अपने हाथों से देह को मले किन्तु (तहाभूयं) अपने शरीर को जल से भीगा हुआ (समुप्पेह) देख कर साधु अपने शरीर का (नो संघट्टए) संघट्टा-स्पर्श भी न करे ॥७॥

इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं।
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नो णं निव्वावए मुणी ॥८॥

अन्वयार्थ — (मुणी) मुनि (इंगालं) अङ्गारे को (अगणिं) अग्नि को (अच्चिं) ज्वाला सहित अग्नि को (वा) अथवा (सजोइयं) अग्नि सहित (अलायं) अधजले काठ को (न उंजिज्जा) अग्नि न जलावे (न घट्टिज्जा) संघट्टा न करे और (नो) न (णं) उस अङ्गारादि को (निव्वावए) पानी आदि से बुझावे ॥८॥

तालियटेण पत्तेण, साहाए विहुयणेण वा ।
न वीइज्जऽप्पणो काय, वाहिर वावि पुग्गल ॥९॥

अन्वयार्थ —(तालियटेण) ताड वृक्ष के पखे से (पत्तेण) पत्तो से (साहाए) वृक्ष की शाखा से (वा) अथवा (विहुयणेण) पखे से अथवा वस्त्रादि से मुनि (अप्पणो) अपने (काय) शरीर पर (न वीइज्ज) हवा न करे (वावि) इसी प्रकार (वाहिर) बाहरी (पुग्गल) पदार्थों को अर्थात् गर्म दूधादि को ठडा करने के लिए हवा भी न करे ॥९॥

तणरुक्ख नछिंदिज्जा, फल मूल च कस्सई ।
आमग विविहं वीय, मणसा वि न पत्थए ॥१०॥

अ वयार्थ — साधु (तणरुक्ख) तृण-घास वृक्षादि को तथा (कस्सई) किसी वृक्षादि के (फलं) फल (च) और (मूल) जड को (न छिंदिज्जा) न काटे तथा (विविह) नाना प्रकार के (आमग) सचित्त (वाय) बीजो को सेवन करने की (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे ॥१०॥

गहणेसु न चिट्ठिज्जा, वीएसु हरिएसु वा ।
उदगम्मि तहा निच्च, उत्तिगपणगेसु वा ॥११॥

अ वयार्थ —(गहणेसु) वृक्षो के कुज मे एव गहन वन मे (बीएसु) बीजो पर (वा) अथवा (हरिएसु) दूब आदि हरित काय पर (तहा) तथा (उदगम्मि) उदक नाम की वनस्पति पर अथवा जहां जल फैला हुआ हो ऐसी जगह पर (वा) तथा (उत्तिग) सर्पच्छत्रा सप के छत्र के आकार वाली वनस्पति पर तथा (पणगेसु) पनक उल्लि नामक

वनस्पति विशेष पर एवं सीलन फूलन पर (निच्च) कभी भी (न चिट्ठिज्जा) खड़ा न रहे तथा न बैठे और न सोवे ॥११॥

तसे पाणे न हिंसिज्जा, वाया अदुव कम्मुणा ।
उवरओ सव्वभूएसु, पासेज्ज विविहं जगं ॥१२॥

अन्वयार्थ — (तसे) द्वीन्द्रियादि त्रस (पाणे) प्राणियों की (वाया) वचन से (कम्मुणा) काया से (अदुव) अथवा मन से भी (न हिंसिज्जा) हिंसा न करे भिक्षु (सव्वभूएसु) प्राणीमात्र पर (उवरओ) समभाव रखता हुआ (विविहं) नाना प्रकार के त्रस-स्थावर रूप (जगं) संसार को (पासेज्ज) ज्ञानदृष्टि से देखे अर्थात् ऐसा विचार करे कि नरक तिर्यंचादि गतियों में जीव कर्मों के वश होकर नाना दुःख पा रहे हैं ॥१२॥

अट्ठ सुहुमाइं पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए ।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा ॥१३॥

अन्वयार्थ — (संजए) साधु (जाइं) जिन आगे कहे जाने वाले (अट्ठ) आठ प्रकार के (सुहुमाइं) सूक्ष्म जीवों को (जाणित्तु) जानने से (भूएसु) जीवों पर (दयाहिगारी) दया का अधिकारी होता है-उन जीवों को (पेहाए) अच्छी भांति देखकर (आस) बैठे (चिट्ठ) खड़ा रहे (वा) अथवा (सएहि) सोवे ॥१३॥

कयराइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं पुच्छिज्ज संजए ।
इमाइं ताइं मेहावी, आइक्खिज्ज वियक्खणो ॥१४॥

अन्वयार्थ — (संजए) मवती शिष्य (पुच्छिज्ज) प्रश्न

करता है कि हे भगवन्! (जाइ) जिन जीवो को-जानने से मुनि दया का अधिकारी होता है वे (अट्ठ सुहुमाइ) आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव (क्यराइ) कौन से हैं ? (मेहावी) बुद्धिमान् (वियक्खणो) विचक्षण गुरु (आइक्खिज्ज) कहते हैं कि (ताइ) वे (इमाइ) ये हैं ।१४।।

सिणेह पुप्फसुहुम च, पाणुत्तिग तहेव य ।
पणग वीयहरिय च, अडसुहुम च अट्ठम ।।१५।।

अन्वयार्थ —(सिणेह) ओस, बर्फ, धुंअर, ओले आदि (च) और (पुप्फसुहुम) वड और उदुम्बर आदि के फूल जो सूक्ष्म तथा उसी रग के होने से जल्दी नजर नही आते (तहेव) उसी प्रकार (पाण) कुन्थुआ आदि सूक्ष्म जीव जो चलते हुए ही दिखाई देते हैं स्थिर नजर नही आते (य) और (उत्तिग) कीडीनगरा कीडियो का बिल (पणग) चौमासे मे भूमि और काठ आदि पर होने वाली पाँच रग की लीलन-फूलन (वीय) शाली आदि वीज का अग्रभाग-जिससे अकुर उत्पन्न होता है (च) और (हरिय) नवीन उत्पन्न हुई हरितकाय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाली होती है (च) और (अट्ठम) आठवां (अडसुहुम) अण्डसूक्ष्म अर्थात् मक्खी, कीडी, छिपकली आदि के सूक्ष्म अण्डे–ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं ।।१५।।

एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण सजए ।
अप्पमत्तो जए निच्च, सव्विदिए समाहिए ।१६।।

अन्वयार्थ —(सजए) साधु (एव) इस प्रकार (एयाणि) पूर्वोक्त आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवो को (जाणित्ता) जानकर

(सव्विंदिय समाहिए) सब इन्द्रियों का दमन करता हुआ एवं (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित होकर (निच्च) हमेशा (सव्वभावेण) सब भावों से तीन करण तीन योग से (जए) इनकी यतना करने में सावधान रहे ॥१६॥

> धुवं च पडिलेहिज्जा, जागसा पायकंबलं ।
> सिज्जमुच्चारभूमिं च, संथारं अदुवाऽऽसणं ॥१७॥

अन्वयार्थ — साधु (पायकंबल) पात्र और कंबल (सिज्ज) शय्या (च) और (उच्चारभूमि) उच्चारभूमि मलादि त्यागने का स्थान (संथार) बिछौना (अदुवा) अथवा (आसणं) पीठ फलकादि आसन इन सबका (जागसा) एकाग्र चित्त से (च) और (धुवं) नित्य नियमपूर्वक यथासमय (पडिलेहिज्जा) प्रतिलेखना करे ॥१७॥

> उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं ।
> फासुयं पडिलेहित्ता, परिट्ठाविज्ज संजए ॥१८॥

अन्वयार्थ — (संजए) साधु (फासुयं) जीव रहित स्थान की (पडिलेहित्ता) प्रतिलेखना करके वहां (उच्चारं) विष्टा (पासवणं) मूत्र (खेलं) कफ और (सिंघाणजल्लियं) नाक का मैल आदि (परिट्ठाविज्ज) यतनापूर्वक परठवे ॥१८॥

> पविसित्तु परागारं, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
> जयं चिट्ठे मियं भासे, न य रूवेसु मणं करे ॥१९॥

अन्वयार्थ — (पाणट्ठा) पानी के लिए (वा) अथवा (भोयणस्स) भोजन के लिए (परागारं) गृहस्थ के घर में (पविसित्तु) प्रवेश करके साधु (जयं) यतनापूर्वक खड़ा रहे तथा (मियं) आवश्यकतानुसार परिमित (भासे) वचन

बोले (य) और (रूवेसु) वहाँ स्त्र्यादि के रूप सौन्दर्य को देखकर (मण) मन को (न करे) चचल न होने दे ॥१९॥

वहु सुणेइ कन्नेहिं, बहु अच्छीहिं पिच्छइ ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥२०॥

अन्वयार्थ — (भिक्खू) साधु (कन्नेहिं) कानो से (बहु) बहुत कुछ बुरी-भली बातें (सुणेइ) सुनता है (य) तथा (अच्छीहिं) आँखो से (बहु) बहुत कुछ भले-बुरे पदार्थों को (पिच्छइ) देखता है किन्तु (दिट्ठं) देखी हुई (सुयं) सुनी हुई (सव्वं) सब बातें (अक्खाउ) किसी से कहना (न अरिहइ) साधु को उचित नही है ॥२०॥

सुयं वा जइ वा दिट्ठं, न लविज्जोवघाइयं ।
न य केणइ उवाएण, गिहिजोगं समायरे ॥२१॥

अन्वयार्थ — (सुयं वा) सुनी हुई (जइ वा) अथवा (दिट्ठं) देखी हुई बात (उवघाइयं) किसी भी प्राणी को द्रव्य भाव से पीडा पहुचाने वाली हो तो (नलविज्ज) साधु न कहे (य) और (केणइ-केण) किसी भी (उवाएण) कारण से (गिहिजोगं) गृहस्थ का कार्य-अर्थात्-उसके बच्चो को खेलाना आदि कार्य (न समायरे) कदापि न करे ॥२१॥

निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा ।
पुट्ठो वावि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे ॥२२॥

अन्वयार्थ — (पुट्ठो) किसी के पूछने पर (वावि) अथवा (अपुट्ठो) बिना पूछे साधु (निट्ठाणं) सरस आहार मिला हो तो उसे (भद्दगं) यह आहार तो अच्छा है (ति) इस प्रकार (न निद्दिसे) न कहे (वा) अथवा (रसनिज्जूढं)

नीरस आहार मिला हो तो उसे (पावगं) यह आहार तो बुरा है इस प्रकार न कहे (वा) और इसी तरह (लाभा लाभ) आज तो आहार खूब मिला है अथवा आज आहार नहीं मिला है इस प्रकार आहार के लाभालाभ के विषय में भी साधु कुछ न कहे ॥२२॥

न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उञ्छं अयंपिरो ।
अफासुयं न भुंजिज्जा, कीयमुद्देसियाहडं ॥२३॥

अन्वयार्थ — (भोयणम्मि) भोजन में (गिद्धो) गृद्ध होकर साधु केवल धन सम्पन्न गृहस्थों के घर ही (न चरे) गोचरी के लिए न जावे किन्तु (उञ्छं) ज्ञात अज्ञात कुल में एवं गरीब और धनवान् दोनों प्रकार के दाताओं के घर में (चरे) समान भाव से गोचरी जावे (य) और (अयंपिरो) दाता का अवगुणवाद न बोलता हुआ जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहे (अफासुयं) सचित्त मिश्र आदि अप्रासुक (कीयं) साधु के लिए खरीदा हुआ (उद्देसियं) साधु के निमित्त बनाया हुआ (आहडं) साधु के लिए सामने लाया हुआ आहारादि ग्रहण न करे किन्तु यदि कदाचित् भूल से ग्रहण कर लिया गया हो तो उसे (न भुंजिज्जा) न भोगवे ॥२३॥

सन्निहिं च न कुव्विज्जा, अणुमायं पि संजए ।
मुहाजीवी असंबद्धे, हविज्ज जगनिस्सिए ॥२४॥

अन्वयार्थ — (संजए) साधु (अणुमायं पि) अणुमात्र भी (सन्निहिं) घी, गुड़ आदि पदार्थों का संचय (न कुव्विज्जा) न करे किन्तु (मुहाजीवी) निस्स्वार्थ भाव से एवं सावद्य व्यापार के बिना भिक्षा लेकर अपना जीवन बनाए

करने वाला (असबद्धे) गृहस्थों के प्रतिबन्ध से मुक्त (य) और (जगनिस्सिए) छ काय जीवो का रक्षक (हविज्ज) बने। २४॥

लूहवित्ती सुसतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्त न गच्छिज्जा, सुच्चा ण जिणसासण ॥२५॥

अन्वयार्थ — साधु (लूहवित्ती) रूखा-सूखा खाकर सयम निर्वाह करने वाला (सुसतुट्ठे) जैसा रूखा-सूखा निर्दोष आहार मिले उसी मे सन्तुष्ट रहने वाला (अप्पिच्छे) अल्प इच्छा वाला और (सुहरे) किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुचा कर अल्प आहार से ही सतोष करने वाला अर्थात् ऊनोदरी आदि तप करने वाला (सिया) हो और (ण) क्रोधादि के कटु परिणामो को बताने वाले (जिणसासण) जिनशासन को-जिनवचनो को (सुच्चा) सुनकर (आसुरत्त) किसी के प्रति क्रोध (न गच्छिज्जा) न करे ॥२५॥

कन्नसुक्खेहिं सद्दे हिं, पेम्म नाभिनिवेसए।
दारुण कक्कस फास, काएण अहियासए ॥२६॥

अन्वयार्थ — साधु (कन्नसुक्खेहिं) कानो को प्रिय लगने वाले (सद्दे हिं) शब्दो मे (पेम्म) रागभाव (नाभिनिवेसए) न करे-और इसी प्रकार (दारुण) दुखजनक एव (कक्कस) कठोर (फास) स्पर्श को (काएण) शरीर से (अहियासए) सहन करे किन्तु द्वेष न करे अर्थात् मनोज्ञ शब्दादि विषयो मे साधु को रागभाव और अमनोज्ञ शब्दादि विषयो मे द्वेष न करना चाहिए ॥२६॥

खुह पिवास दुस्सिज्ज, सीउण्ह अरइ भय।
अहियासे अव्वहिओ, देहदुक्ख महाफल ॥२७॥

अन्वयार्थ — साधु (खुहं) भूख (पिवासं) प्यास (दुस्सिज्जं) विषम भूमि वाला निवास स्थान (सीउण्हं) सर्दी और गर्मी (अरइं) अरति और (भयं) चोर व्याघ्रादि का भय-इन सब परीषहों को (अव्वहिओ) अदीन भाव से (अहियासे) सहन करे-क्योंकि (देहदुक्खं) शारीरिक कष्टों को सम भावपूर्वक सहन करने से ही (महाफलं) मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति होती है ॥२७॥

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं मणसा वि न पत्थए ।२८।

अन्वयार्थ — (आइच्चे) सूर्य के (अत्थंगयम्मि) अस्त हो जाने पर (य) और (पुरत्था अणुग्गए) प्रातःकाल सूर्य के उदय न होने तक (सव्वं) सब प्रकार के (आहार माइयं-आहारमइयं) आहारादि को साधु (मणसावि) मन से भी (न पत्थए) इच्छा न करे-तो फिर वचन और काया की तो बात ही क्या ? ॥२८॥

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे।
हविज्ज उयरे दंते, थोवं लद्धुं न खिंसए ॥२९॥

अन्वयार्थ —(अतिंतिणे) तिनतिनाहट न करता हुआ अर्थात्-आहारादि के न देने पर भी गृहस्थ का अवर्णवाद न बोलने वाला (अचवले) चपलता रहित (अप्पभासी) अल्प भाषी (मियासणे) परिमित आहार करने वाला अल्पाहारी (उयरे दंते) उदर का दमन करने वाला अर्थात् भूख-प्यास आदि परीषहों का समभावपूर्वक सहन करने वाला (हविज्ज) होवे तथा (थोवं) थोड़ा आहार (लद्धुं) मिलने पर (न खिंसए) खीझे नहीं अर्थात् दाता की अथवा उस पदार्थ

की निंदा न करे ॥२९।

न वाहिर परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे ।
सूयलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सिवुद्धिए ॥३०॥

अन्वयार्थ - साधु (वाहिर) किसी भी व्यक्ति का (न परिभवे) अपमान तिरस्कार न करे और (अत्ताण न समुक्कसे) न आत्मप्रशंसा करे (सूयलाभे) श्रुतज्ञान की प्राप्ति होने पर श्रुतज्ञान का (जच्चा) जाति का (तवस्सि-वुद्धिए) तप का और बुद्धि का (न मज्जिज्जा) मद न करे अर्थात् कुल, बल, रूप ऐश्वर्य आदि किसी का मद न करे ॥३०॥

से जाणमजाण वा, कट्टु आहम्मियं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं, वीयं तं न समायरे ।३१॥

अन्वयार्थ — (जाण) जानते हुए (वा) अथवा (अजाण) अजानपने से प्रमादवश (आहम्मियं) यदि कदाचित् कोई अधार्मिक (पयं) कार्य (कट्टु) हो जाय तो (से) निग्रन्थाचार का पालन करने वाला मुनि उसे छिपाने की चेष्टा न करे किन्तु (खिप्पं) शीघ्र तत्काल (अप्पाणं) प्रायश्चित्त द्वारा उस पाप का दूर कर अपनी आत्मा को (संवरे) निर्मल बना ले और (वीयं) फिर दुबारा (तं) वैसा पाप कार्य–वैसी भूल (न समायरे) न होने पावे उसके लिए सावधान रहे ॥३१॥

अणायार परक्कम्म, नेव गूहे न निण्हवे ।
सुई सया वियडभावे, असंसत्ते, जिइंदिए ॥३२॥

अन्वयार्थ — (सुई) निर्मल बुद्धि वाले (

सरल चित्त वाले (असंसत्ते) विषयों की आसक्ति रहित और (सया) सदा (जिइंदिए) इन्द्रियों को वश में रखने वाले मुनि को अनाचार का सेवन न करना चाहिये किन्तु प्रमादवश (अणयारं) अनाचार का (परक्कम्म) सेवन हो गया हो तो-गुरु महाराज के पास आलोचना कर उसका प्रायश्चित्त ले, किन्तु आलोचना करते समय (नेवगूहे) अधूरी बात कह कर उसे छिपाने की कोशिश न करे और (न निण्हवे) न असली बात को छिपाने के लिए मायाचार का सेवन करे किन्तु जो बात जिस तरह से हुई हो उसे उसी रूप में ज्यों की त्यों कह दे ॥३२॥

> अमोहं वयणं कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ।
> तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥३३॥

अन्वयार्थ — (महप्पणो) ज्ञानादि गुणों के धारक महात्मा (आयरियस्स) आचार्य महाराज के (वयणं) वचन को आज्ञा को (अमोहं) सफल (कुज्जा) करे अर्थात् (तं) आचार्य महाराज की आज्ञा को (वायाए) 'तहत्ति आपकी आज्ञा शिरोधार्य है' इत्यादि आदरसूचक शब्दों से (परिगिज्झ) स्वीकार करे किन्तु केवल वचनों द्वारा स्वीकार कर ही न रह जाय अपितु उस आज्ञा का (कम्मुणा) कार्य द्वारा (उववायए) अपने आचरण में लावे ॥३३॥

> अधुवं जीवियं नच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया ।
> विणियट्टिज्ज भोगेसु, आउं परिमियमप्पणो ॥३४॥

अन्वयार्थ — (जीवियं) इस जीवन को (अधुवं) अस्थिर एवं क्षणभंगुर (नच्चा) जानकर तथा (अप्पणो)

अपने (आउ) आयुष्य को (परिमिय) परिमित-थोडा जानकर अर्थात् न जाने क्षण मे क्या हो जायगा ऐसा जानकर तथा (सिद्धिमग्ग) सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को (वियाणिया) कल्याणकारी समझ कर साधु (भोगेसु) कामभोगो से (विणिअट्टिज्ज) सर्वथा निवृत्त हो जाय ॥३४॥

> बल थामञ्च पेहाए सद्धामारुग्ग मप्पणो ।
> खित्त काल च विन्नाय, तहप्पाणं निजुजए ॥३५॥

अन्वयार्थ — (अप्पणो) अपने मानसिक बल को (च) और (थाम) शारीरिक बल को तथा (सद्धां) श्रद्धा-दृढता को और (आरुग्ग) आरोग्य तन्दुरुस्ती को (पेहाए) देखकर (च) तथा (खित्त काल) द्रव्य क्षेत्र काल भाव को (विन्नाय) जानकर (तहप्पाण) जैसा अपना बलादि देखे उसी प्रकार अपनी आत्मा को (निजु जए) तपश्चर्यादि धर्म कार्यो मे लगावे-किन्तु प्रमाद न करे ॥३५॥

> जरा जाव न पीडेई वाही जाव न वड्डई ।
> जाविंदिया न हायंति, ताव धम्म समायरे ॥३६॥

अन्वयार्थ — महापुरुष फरमाते हैं कि हे आर्यो ! (जाव) जब तक (जरा) बुढापा-जरा रूपी राक्षसी (न पीडई) पीडित नही करती अर्थात् तुम्हारे शरीर को जर्जरित नही बना डालती (जाव) जब तक (वाही) व्याधि-नाना प्रकार के रोग (न वड्डई) तुम्हारे शरीर को नही घेर लेते और (जाव) जब तक (इदिया) श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ (न हायति) शक्तिहीन होकर शिथिल नहीं हो

सरल चित्त वाले (असंसत्तो) विषयो की ग्रासक्ति रहित ग्रौर (सया) सदा (जिइंदिए) इन्द्रियो को वश मे रखने वाले मुनि को अनाचार का सेवन न करना चाहिये किन्तु प्रमादवश (अणयार) अनाचार का (परक्कम्म) सेवन हो गया हो तो-गुरु महाराज के पास आलोचना कर उसका प्रायश्चित ले, किन्तु आलोचना करते समय (नेवगूहे) अधूरी बात कह कर उसे छिपाने की कोशिश न करे और (न निण्हवे) न असली बात को छिपाने के लिए मायाचार का सेवन करे किन्तु जो बात जिस तरह से हुई हो उसे उसी रूप मे ज्यो की त्यो कह दे ॥३२॥

> अमोह वयण कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ।
> त परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए ॥३३॥

अन्वयार्थ— (महप्पणो) ज्ञानादि गुणो के धारक महात्मा (आयरियस्स) आचाय महाराज के (वयण) वचन की आज्ञा को (अमोह) सफल (कुज्जा) करे-अर्थात् (त) आचार्य महाराज की आज्ञा को (वायाए) 'तहत्ति आपकी आज्ञा शिरोधार्य है' इत्यादि आदरसूचक शब्दों से (परिगिज्झ) स्वीकार करे किन्तु केवल वचनो द्वारा स्वीकार कर ही न रह जाय अपितु उस आज्ञा को (कम्मुणा) काय द्वारा (उववायए) अपने आचरण मे लावे ॥३३॥

> अधुव जीविय नच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया ।
> विणिअट्टिज्ज भोगेसु, आउ परिमियमप्पणो ॥३४॥

अन्वयार्थ — (जीविय) इस जीवन को (अधुव) अस्थिर एव क्षणभगुर (नच्चा) जानकर तथा (अप्पणो)

अपने (आउ) आयुष्य को (परिमिय) परिमित-थोडा जानकर अर्थात् न जाने क्षण मे क्या हो जायगा ऐसा जानकर तथा (सिद्धिमग्ग) सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को (वियाणिया) कल्याणकारी समझ कर साधु (भोगेसु) कामभोगो से (विणिअट्टिज्ज) सवथा निवृत्त हो जाय ॥३४॥

वल थामञ्च पेहाए सद्धामारुग्ग मप्पणो ।
खित्त काल च विन्नाय, तहप्पाण निजुजए ॥३५॥

अन्वयार्थ — (अप्पणो) अपने मानसिक वल को (च) और (थाम) शारीरिक वल को तथा (सद्धां) श्रद्धा-दृढता को और (आरुग्ग) आरोग्य तन्दुरुस्ती को (पेहाए) देखकर (च) तथा (खित्त काल) द्रव्य क्षेत्र काल भाव को (विन्नाय) जानकर (तहप्पाण) जैसा अपना बलादि देखे उसी प्रकार अपनी आत्मा को (निजु जए) तपश्चर्यादि धर्म कार्यो मे लगावे-किन्तु प्रमाद न करे ॥३५॥

जरा जाव न पीडेई वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायति, ताव धम्म समायरे ॥३६॥

अन्वयार्थ — महापुरुष फरमाते हैं कि हे आर्यो ! (जाव) जब तक (जरा) बुढापा जरा रूपी राक्षसी (न पीडेई) पीडित नही करती अर्थात् तुम्हारे शरीर को जर्जरित नही बना डालती (जाव) जब तक (वाही) व्याधि-नाना प्रकार के रोग (न वड्ढई) तुम्हारे शरीर को नही घर लेते और (जाव) जब तक (इदिया) श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ (न हायति) शक्तिहीन होकर शिथिल नहीं हो

जाती (ताव) तब तक-इससे पहले-पहले (धम्म) श्रुत चारित्र रूप धर्म का (समायरे) आचरण कर लेना चाहिए अर्थात् जब तक धम का साधनभूत यह शरीर स्वस्थ एव सुदृढ बना हुआ है तब तक धार्मिक क्रियाओ का खूब आचरण कर लेना चाहिए क्योकि उपरोक्त अङ्गो में से किसी भी अङ्ग की हानि हो जाने पर फिर यथावत् धर्म का आचरण नही हो सकता ॥३६॥

कोह माण च माय च, लोभ च पाववड्ढण ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छतो हियमप्पणो ॥३७॥

अन्वयार्थ — (अप्पणो) अपनी आत्मा का (हिय) हित (इच्छतो) चाहने वाले साधु को (पाववड्ढण) पाप को बढाने वाले (कोह) क्रोध (च) तथा (माण) मान (माय) माया (च) और (लोभ) लोभ इन (चत्तारि) चार (दोसे) दोषो का (उ) अवश्य ही (वमे) त्याग कर देना चाहिए ३७

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥३८॥

अन्वयार्थ —(कोहो) क्रोध (पीइ) प्रीति का (पणासेइ) नाश कर देता है (माणो) मान अहकार भाव (विणयनासणो) विनय का नाश कर देता है (माया) माया-कपटाई (मित्ताणि) मित्रता का (नासेइ) नाश कर देती है और (लोभो) लोभ (सव्वविणासणो) सभी सद्गुणो का नाश कर देता है ॥३८॥

उवसमेण हणे कोह माण मद्दवया जिणे ।
माय चज्जव भावेण, लोभ सतोसओ जिणे ॥३९॥

अन्वयार्थ —(कोह) क्रोध को (उवसमेण) क्षमा रूपी खड्ग से (हणे) नष्ट करे (माण) मान को (मद्दवया) मृदुता विनय भाव से (जिणे) जीते (माय) माया को (अज्जवभावेण) सरलता से जीते (च) और (लोभ) लोभ को (सतोसग्रो) सतोप से (जिणे) जीते ॥३६॥

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचति मूलाइ पुणब्भवस्स ।४०।

अन्वयार्थ — (कोहो) क्रोध (य) और (माणो य) मान ये दोनो (अणिग्गहीया) क्षमा और विनय से शान्त न किये गये हो (य) और (माया) माया (य) तथा (लोभो) लोभ ये दोनो (पवड्ढमाणा) सरलता और सतोप रूपी सद्गुणो को धारण न करने स वढ रहे हो तो (कसिणा) आत्मा को मलीन बनाने वाले (एए) ये (चत्तारि) चारो (कसाया) कपाय (पुणब्भवस्स) पुनजन्म रूपी विपवृक्ष की (मूलाइ) जडो को (सिंचति) सीचते हैं अर्थात् ये चारों कपाय जन्म-मरण रूपी मसार को बढाते हैं ॥४०॥

रायणिएसु विणयं पउजे, धुवसीलय सयय न हावइज्जा।
कुम्मुव्व अल्लीणपलीणगुत्तो, परक्कमिज्जा, तव सजमम्मि ४१

अन्वयार्थ — (रायणिएसु) रत्नाधिक अर्थात् दीक्षा मे अपने से बडे चारित्रवृद्ध और ज्ञानवृद्ध गुरुजनो को (विणय) विनय (पउजे) करे (धुवसीलय) अपने उच्च चारित्र का अर्थात् अठारह हजार शीलाङ्ग का (सयय) कदापि (न हावइज्जा) त्याग न करे और (कुम्मुव्व) कछुए की भाति (अल्लीणपलीणगुत्तो) अपने समस्त अङ्गोपाङ्गो

को वश में रखता हुआ साधु (तवसंजमम्मि) तप संयम में (परक्कमिज्जा) उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करे ॥४१॥

> निद्दं च न बहु मन्निज्जा, सप्पहासं विवज्जए।
> मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥४२॥

अन्वयार्थ —साधु (निद्दं) निद्रा का (न बहुमन्निज्जा) बहुत आदर न करे अर्थात् अधिक न सोवे (च) और (सप्पहासं) अधिक हंसी-मजाक करना (विवज्जए) त्याग दे (मिहो कहाहिं) किसी की गुप्त बातों को सुनने मे तथा स्त्रीकथा आदि मे (न रमे) आसक्त न होवे किन्तु (सया) सदा (सज्झायम्मि) वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप स्वाध्याय में (रओ) रत रहे ॥४२॥

> जोगं च समणधम्मम्मि जुंजे अनलसो धुवं।
> जुत्तो य समणधम्मम्मि, अट्ठं लहइ अणुत्तरं ॥४३॥

अन्वयार्थ — (अनलसो) आलस्य का सर्वथा त्याग करके (जोगं) मन, वचन, काया रूप तीन योगों को (च) और कृत, कारित, अनुमोदन रूप तीन करण को (समणधम्मम्मि) क्षमा, मार्दव आर्जव, मुक्ति, तप, संयम सत्य, शौच, अकिंचनत्व और ब्रह्मचर्य रूप दस श्रमण धर्म में (धुवं) निरन्तर (जुंजे) लगावे (य) क्योंकि (समणधम्मम्मि) श्रमण धर्म में (जुत्तो) लगा हुआ मुनि (अणुत्तरं) सर्वोत्कृष्ट (अट्ठं) अर्थ को मोक्ष को (लहइ) प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

> इहलोगपारत्तहियं, जेणं गच्छइ सुग्गइं।
> बहुस्सुयं पज्जुवासिज्जा, पुच्छिज्जत्थविणिच्छयं ॥४४॥

अन्वयार्थ — (जेण) जिससे (इहलोगपारत्तहियं) इस लोक मे और परलोक मे हित होता है तथा (सुग्गइ) सुगति की (गच्छइ) प्राप्ति होती है-ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधु (बहुस्सुय) आगमो के मर्म को जानने वाले बहुश्रुत मुनि की (पज्जुवासिज्जा) पर्युपासना-सेवा-शुश्रूषा करे और सेवा शुश्रूषा करता हुआ (पुच्छिज्ज) प्रश्न पूछ पूछ कर (अत्थविणिच्छय) पदार्थों का यथार्थ निश्चय करे ।।४४।।

हत्थ पाय च काय च, पणिहाय जिइंदिए ।
अल्लीणगुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी ।।४५।।

अन्वयार्थ — (जिइंदिए) जितेन्द्रिए (मुणी) मुनि (हत्थ) हाथ (च) और (पाय) पैर (च) तथा (काय) शरीर को (पणिहाय) जिस प्रकार गुरु महाराज का अविनय न हो उस प्रकार से सकोच कर तथा (अल्लीणगुत्तो) मन वचन काया से सावधान होकर (गुरुणो) गुरु के (सगासे) समीप (निसिए) बैठे ।।४५।।

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न य उरु समासिज्जा, चिट्ठिज्जा गुरुणतिए ।।४६।।

अन्वयार्थ — (किच्चाण) आचार्य महाराज के (पक्खओ) पसवाडे की तरफ अर्थात् शरीर से शरीर चिपा कर (न चिट्ठिज्जा) न बैठे और (न पुरओ) न एकदम मुख के नजदीक बैठे (नेव पिट्ठओ) तथा पीठ पीछे भी न बैठे (य) और (गुरुणतिए) गुरु के सामने (उरु) पैर पर पैर (न समासिज्जा) रखकर न बैठे अर्थात् अविनयसूचक आसनो से न बैठे ।।४६।

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥४७॥

अन्वयार्थ — विनीत शिष्य (अपुच्छिओ) गुरु महाराज के बिना पूछे और (भासमाणस्स) गुरु महाराज जब किसी से बातचीत कर रहे हों तब (अंतरा) बीच-बीच में (न भासिज्जा) न बोले और (पिट्ठिमंसं) किसी की पीठ पीछे निन्दा (न खाइज्जा) न करे और (मायामोसं) कपटसहित झूठ भी (विवज्जए) न बोले ॥४७॥

अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥४८॥

अन्वयार्थ —(जेण) जिस भाषा के बोलने से (अप्पत्तियं) अप्रीति द्वेष या अविश्वास (सिया) पैदा हो (वा) अथवा जिससे (परो) दूसरा व्यक्ति (आसु) शीघ्र (कुप्पिज्ज) कुपित हो जाता हो तो (तं) उस प्रकार की (अहियगामिणिं) अहित करने वाली (भासं) भाषा साधु (सव्वसो) कभी (न भासिज्जा) न बोले ॥४८॥

दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुन्नं वियं जियं ।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥४९॥

अन्वयार्थ — (अत्तवं) आत्मज्ञानी साधु (दिट्ठं) साक्षात् देखी हुई (मियं) परिमित (असंदिद्धं) सन्देहरहित (पडिपुन्नं) पूर्वापर सम्बन्ध सहित (वियं) स्पष्ट अर्थ वाली (जियं) चालू विषय का प्रतिपादन करने वाली (अयंपिरं) मध्यस्थ भाव से उच्चारण की हुई (अणुव्विग्गं) किसी को उद्वेग-पीड़ा न पहुचाने वाली (भासं) भाषा (निसिर) बोले ॥४९॥

आयारपन्नत्तिधर, दिट्ठिवायमहिज्जग ।
वायविक्खलिय नच्चा, न त उवहसे मुणी ॥५०॥

अन्वयार्थ — (अपारपन्नत्तिधर) आचाराग व्याख्या प्रज्ञप्ति आदि के ज्ञाता अथवा आचारधर स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग आदि का ज्ञान रखने वाला और प्रज्ञप्तिधर स्त्रीलिङ्ग-पुल्लिङ्ग आदि के विशेषणो को विशेष रूप से जानने वाला और (दिट्ठिवाय) दृष्टिवाद का (अहिज्जग) अध्ययन करने वाला अथवा प्रकृति प्रत्यय लोप आगम वर्णविकार लकार आदि व्याकरण के सभी अङ्गो को भली प्रकार जानने वाला मुनि भी यदि कदाचित् (वायविक्खलिय) बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाय अर्थात् लिङ्गादि से अशुद्ध शब्द का प्रयोग कर बठे तो (नच्चा) उनके अशुद्ध वचन को जानकर (मुणी) साधु (न) उन महापुरुषो का (न उवहसे) उपहास न करे ॥५०॥

नक्खत्त सुमिण जोग, निमित्तमतभेसज ।
गिहिणो त न आइक्खे, भूयाहिगरण पय ॥५१॥

अन्वयार्थ — (नक्खत्त) नक्षत्र विद्या (सुमिण) स्वप्नो का शुभाशुभ फल बतलाने वाली विद्या (जोग) वशीकरणादि चूर्ण योग (निमित्त) भूत, भविष्य का फल बताने वाली निमित्त विद्या (मत) भूत वगैरह निकालने की मन्त्र-विद्या (भेसज) अतिसार आदि रोगो की औषधि (त) ये सब बातें साधु (गिहिणो) गृहस्थों को (न आइक्खे) न बतावे क्योकि ये (भूयाहिगरण) प्राणियों के अधिकरण के (पय) स्थान हैं-अर्थात् इनकी प्ररूपणा करने से छकाय जीवों की हिंसा होती है ॥५१॥

अन्नट्ठ पगड लयण, भइज्ज सयणासण ।
उच्चार भूमिसपन्न इत्थीपसु विवज्जिय ॥५२॥

अन्वयार्थ — (लयण) जो मकान (अन्नट्ठ) गृहस्थ ने अपने निज के लिए (पगड) बनाया हो अर्थात् जो मकान साधु का निमित्त रखकर बनाया गया हो तथा (उच्चार-भूमिसपन्न) जिसमे मलमूत्रादि परठवने के लिए स्थान हो और (इत्थीपसुविवज्जिय) जो मकान स्त्री, पशु, पण्डक आदि से रहित हो ऐसे मकान मे साधु (भइज्ज) ठहर सकता है और इसी तरह (सयणासयणं) जो शय्या तथा पाट पाटलादि गृहस्थ ने अपने लिए बनाये हो उन्हें साधु अपने उपयोग में ले सकता है ॥५२॥

विवित्ता य भवे सिज्जा, नारीण न लवे कह ।
गिहिसथव न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं सथव ॥५३॥

अन्वयार्थ — (सिज्जा) यदि स्थानक (विवित्ता) विविक्त (भवे) हो अर्थात् वहाँ साधु अकेला ही हो तो (नारीण) स्त्रियो के साथ (कह) बातचीत (न लवे) न करे तथा उन्हें धर्मकथादि भी न सुनावे (य) तथा (गिहि सथव) गृहस्थो के साथ अतिपरिचय भी (न कुज्जा) न करे किन्तु (साहूहिं) साधुओ के साथ ही (सथव) परिचय (कुज्जा) करे ॥५३॥

जहा कुक्कुड पोयस्स, निच्च कुललओ भय ।
एव खु बभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भय ॥५४॥

अन्वयार्थ — (जहा) जिस प्रकार (कुक्कुड पोयस्स) मुर्गी के बच्चे को (निच्च) हमेशा (कुललओ) बिल्ली से

(भय) भय बना रहता है (एव खु) उसी प्रकार (बभया-रिस्स) ब्रह्मचारी पुरुष को (इत्थोविग्गहग्रो) स्त्री के शरीर से सदा (भय) भय मानते रहना चाहिए ॥५४॥

> चित्त भित्तिं न निज्झाए नारिं वा सुग्रलकिय ।
> भक्खर पिव दट्ठूण, दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥५५।

ग्रन्वयार्थ — साधु (चित्त भित्तिं) स्त्री के चित्रो से युक्त भीत को (वा) ग्रथवा (सुग्रलकिय-सग्रलकिय) ग्रच्छे वस्त्राभूपणो से सजी हुई एव बिना सजी हुई (नारिं) कैसी भी स्त्री को (न निज्झाए) ग्रनुरागपूर्वक न देखे । यदि कदाचित् ग्रकस्मात् उधर दृष्टि पड जाय तो (भक्खर पिव) जिस प्रकार सूय को (दट्ठूण) देखकर लोग ग्रपनी दृष्टि को तत्काल हटा लेते हैं उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी (दिट्ठिं) ग्रपनी दृष्टि को (पडिसमाहरे) तत्काल पीछो हटा लेवे क्योकि जिस प्रकार सूय की तरफ ग्रधिक देर तक देखने से दृष्टि निर्वल हो जाती है ठीक उसी प्रकार स्त्री की तरफ ग्रनुरागपूवक देखने से चारित्र मे निर्वलता ग्रा जाती है ॥५५॥

> हत्थपाय पलिच्छिन्न कण्णनासविगप्पिय ।
> ग्रवि वाससय नारिं, बभयारी विवज्जए । ५६॥

ग्रन्वयार्थ — (हत्थपाय पलिच्छिन्न-पडिच्छिन्न) जिस स्त्री के हाथ पैर कट गये हो ग्रौर (कण्णनासविगप्पियं) कान नाक कटी हुई हो ग्रथवा विकृत हो गई हो (ग्रवि-वाससय) जो सौ वप की ग्रायु वाली पूर्ण वृद्धा एव जर्जरित शरीर वाली हो गई हो (नारिं) ऐसी स्त्रियो के

संसर्ग को भी (बभयारी) ब्रह्मचारी साधु (विवज्जए) त्याग दे अर्थात् स्त्रियों का संसर्ग कदापि न करे ॥५६॥

विभूसा इत्थीससग्गो, पणीयं रस भोयणं ।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥५७॥

अन्वयार्थ — (अत्तगवेसिस्स) आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले (नरस्स) ब्रह्मचारी पुरुष के लिए (विभूसा) शरीर की शोभा (इत्थीससग्गो) स्त्री का संसर्ग (पणीयं रसभोयणं) पौष्टिक आहार ये सब (तालउडं) तालपुट नामक (विसं) उग्र विष के (जहा) समान हैं अर्थात् जिस प्रकार तालपुट नाम का विष तालु के लगते ही प्राणों को हर लेता है उसी प्रकार शरीर की विभूषा आदि दुगुण भी साधु के गुणों को नष्ट कर देते हैं ॥५७॥

अंग पच्चंग संठाणं, चारुल्लवियं पेहियं ।
इत्थीणं तं न निज्झाए, कामरागविवड्ढणं ॥५८॥

अन्वयार्थ —(इत्थीणं) स्त्रियों के (अंगपच्चंग संठाणं) अंग-उपांग की रचना (चारुल्लविय पेहियं) मनोहर बोलना और कटाक्षविक्षेपादि युक्त मनोहर देखना (तं) इन सबकी तरफ ब्रह्मचारी पुरुष को (न निज्झाए) रागपूर्वक न देखना चाहिए क्योंकि ये सब (कामरागविवड्ढणं) कामविकार को बढाने वाले हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का नाश करने वाले हैं। ५८॥

विसएसु मणुन्नेसु, पेमं नाभिनिवेसए ।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पुग्गलाण उ ॥५९॥

अन्वयार्थ — (तेसिं) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी

(पुग्गलाण) पुद्‌गलो के (परिणाम) परिणाम को (अणिच्च) अनित्य (विन्नाय) जानकर बुद्धिमान् साधु (मणुन्नेसु) मनोज्ञ (विसएसु) शब्दादि विषयो मे (पेम) रागभाव (नाभिनिवेसए) न करे (उ) और इसी तरह अमनोज्ञ विषयो मे द्वेष भी न करे-क्योकि क्षणभर मे मनोज्ञ पदार्थ अमनोज्ञ और अमनोज्ञ पदार्थ मनोज्ञ हो जाते हैं ऐसी अवस्था मे रागभाव और द्वेषभाव करना व्यर्थ है ॥५६॥

पोग्गलाण परीणाम, तेसिं नच्चा जहा तहा ।
विणीयतण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा ॥६०॥

अन्वयार्थ – (तेसिं) उन शब्दादि विषय सम्बन्धी (पोग्गलाण) पुद्‌गलो को (परीणाम-परीणाम) परिणाम को (जहा तहा) यथावत् जैसा है वैसा (नच्चा) जानकर अर्थात् जो वस्तु आज सुन्दर दिखाई देती है वही कल असुन्दर और असुदर वस्तु सुन्दर दिखाई देने लगती है इस प्रकार पुद्‌गलो के परिणाम को जानकर साधु (विणीयतण्हो तिण्हो) लालसा-रहित होकर (सीईभूएण अप्पणा) अपनी आत्मा को शान्त बनाकर (विहरे) विचरे अर्थात् सयममार्ग का आराधन करे ॥६०॥

जाइ सद्धाइ निक्खतो, परियायट्ठाणमुत्तम ।
तमेव अणुपालिज्जा, गुणे आयरिय समए ॥६१॥

अन्वयार्थ – (जाइ-जाए) जिस (सद्धाइ-सद्धाए) श्रद्धा से एव वैराग्यभाव से (उत्तम) उत्तम (परियायट्ठाण) चारित्र को-प्रव्रज्या को (निक्खतो) स्वीकार किया है (तमेव) उसी श्रद्धा तथा पूर्ण वैराग्य से (आयरिय समए) महापुरुषों द्वारा बताये गये (गुणे) उत्तम गुणो में अनुरक्त रह-

कर (अणुपालिज्जा) साधु को सयम धम का यथावत् पालन करना चाहिए ।।६१।।

तव चिम सजम जोगय च, सज्झायजोग च सया अहिट्ठए।
सुरे व सेणाइ समत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अल परेसि ।६२।

अन्वयार्थ — (व) जिस प्रकार (सेणाइ) चतुरगिणी सेना से घिरा हुआ तथा (समत्तमाउहे) शस्त्रास्त्रो स सुस ज्जित (सुरे) शूरवीर पुरुष अपनी रक्षा करता हुआ दूसरों की भी रक्षा करता है उसी प्रकार (इम च) इस बारह प्रकार के (तव) अशनादि तप (च) और (सजम जोगय) छ जीव निकाय की रक्षा रूप सयम (च) तथा (सज्झाय-जोग) स्वाध्याय योग का (सया) सदा (अहिट्ठिए) आरा-धन करने वाला मुनि (अप्पणो) अपनी आत्मा की रक्षा करने मे एव कल्याण करने मे (अल) समथ (होइ) होता है और (परेसि) दूसरो की भी रक्षा एव कल्याण करने में (अल) समर्थ होता ह अथवा अपनी आत्मा की रक्षा करता हुआ कमरूपी शत्रुओ का नाश करने मे समय होता है ।।६२।।

सज्झायसुज्झाणरयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झई ज सि मल पुरेकड, समीरिय रुप्पमल व जोइणा ६३

अन्वयार्थ —(व) जिस प्रकार (जोइणा) अग्नि द्वारा (समीरिय) तपाए हुए (रुप्पमल) सोने चादी का मैल दूर हो जाता है उसी प्रकार (सज्झाए) वाचना आदि पाच प्रकार की स्वाध्याय और (सज्झाण सुज्झाणरयस्स) धम ध्यान, शुक्लध्यान मे तल्लीन (ताइणो) छ काय जीवों के रक्षक (अपावभावस्स) निष्पापी शुद्ध अन्त करण वाले और (तवे) तपस्या में (रयस्स) रत (सि से) साधु का (पुरे॰

कड) पूर्वभव संचित्त (ज मल) पाप रूपी मैल (विसुज्झई) नष्ट हो जाता है ॥६३॥

से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्तो अममे अकिंचणे।
विरायई कम्मघणम्मि अवगए, कसिणब्भपुडावगमे व चंदिमे
॥६४॥ त्ति बेमि।

अन्वयार्थ — (व) जिस प्रकार (कसिणब्भपुडागमे) सम्पूर्ण बादलों के हट जाने पर (चंदिमे) शरत्कालीन पूर्णमासी का चन्द्रमा (विरायई) शोभित होता है उसी प्रकार (तारिसे) पूर्वोक्त गुणों का धारक (दुक्खसहे) अनुकूल-प्रतिकूल सभी परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने वाला (जिइंदिए) जितेन्द्रिय (सुएणजुत्तो) श्रुतज्ञान से युक्त (अममे) ममत्व भाव से रहित (अकिंचणे) द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित (से) वह साधु (कम्मघणम्मि) ज्ञानावरणीयादि कर्मरूपी बादलों के (अवगए) दूर हो जाने पर (विरायई) निर्मल केवलज्ञान के प्रकाश से शोभित होता है ॥६४॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत्।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का
पहला उद्देशा

थभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणय न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फल व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थ —जो साधु (थभा) अहंकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणय) विनय धर्म की (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नहीं करता है तो (सो चेव) वे अहंकारादि दुगुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणों को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बाँस का (फल) फल (वहाय होइ) स्वय बाँस को नष्ट कर देता है अर्थात जैसा बाँस में फल आने पर बाँस का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा मे अविनय को उत्पन्न करने वाले अहंकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र का नाश हो जाता है ॥१॥

जे यावि मदित्ति गुरु विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुएत्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करंति आसायण ते गुरूण ॥२॥

अन्वयार्थ —(जे) जो साधु (गुरु) गुरु को (मदित्ति) यह मन्द बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझकर (यावि) अथवा

(इमे), यह (डहरे) बालक है (अप्पसुएत्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा) मानकर (हीलनि)--हीलना-निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरूण) गुरुजनो की (आसायण) आशातना (करति) करते हैं जिससे उन्हे (मिच्छ) मिथ्यात्व की (पडिवज्जमाणा) प्राप्ति होती है ।।२।।

पगईइ मदावि भवति एगे, डहरा विय जे सुयबुद्धोववेया ।
आयारमता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ३

अन्वयार्थ.--(एगे) बहुत से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइ पगईए) स्वभाव से (मदावि) मदबुद्धि (भवति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत मे (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुयबुद्धोववेया) शास्त्रो के ज्ञाता एव बुद्धिमान् होते हैं ज्ञान मे न्यूनाधिक होने पर भी, (आयारमता) सदाचारी और (गुणसुट्ठिअप्पा) मूलगुण उत्तरगुणो का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनो का अपमान न करना चाहिए क्योकि (सिहिरिव) जिस प्रकार अग्नि इधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनो की हीलना उसके ज्ञानादि गुणो को (भास कुज्जा) नष्ट कर देनी है अर्थात् गुरुजनो की आशातना करने से ज्ञानादि गुणो का नाश हो जाता है ।।३।।

जे यावि नाग डहरत्ति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ ।
एवायरियपि हु हीलयतो, नियच्छई जाइपह खु मदो ।।४।

अन्वयार्थ --(जे यावि) जो कोई--मूर्ख मनुष्य (डहरति) यह छोटा है इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नाग) साप को (आसायए) छेडता है-लकडी आदि से उसे सताता

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का पहला उद्देशा

थभा व कोहा व मयप्पमाया, गुरुस्सगासे विणय न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो, फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥१॥

अन्वयार्थ—जो साधु (थभा) अहंकार से (व) अथवा (कोहा) क्रोध से (व) अथवा (मयप्पमाया) मायाचार से अथवा प्रमाद से (गुरुस्सगासे) गुरु महाराज के पास (विणय) विनय धर्म को (न सिक्खे) शिक्षा प्राप्त नहीं करता है तो (सो चेव) वे अहंकारादि दुर्गुण (उ) निश्चय से (तस्स) उस साधु के (अभूइभावो) ज्ञानादि सद्गुणों को उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं (व) जिस प्रकार (कीयस्स) बाँस का (फल) फल (वहाय होइ) स्वयं बाँस को नष्ट कर देता है अर्थात् जैसा बाँस के फल आने पर बाँस का नाश हो जाता है उसी प्रकार साधु की आत्मा में अविनय को उत्पन्न करने वाले अहंकारादि दुर्गुण पैदा होने पर चारित्र का नाश हो जाता है ॥१॥

जे यावि मंदित्ति गुरु विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुअत्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करेंति आसायण ते गुरूणं ॥२॥

अन्वयार्थ—(जे) जो साधु (गुरु) गुरु को (मंदित्ति) यह मन्द बुद्धि है (विइत्ता) ऐसा समझकर (यावि) अथवा

(इमे) यह (डहरे)-बालक है (अप्पसुएत्ति) अल्पश्रुत है ऐसा (नच्चा)-मानकर (हीलनि) हीलना-निन्दा करते हैं (ते) वे (गुरूण) गुरुजनो की (आसायण) आशातना (करंति) करते हैं जिससे उन्हे (मिच्छ) मिथ्यात्व की (पडिवज्ज-माणा) प्राप्ति होती है ॥२॥

पगईइ मदावि भवति एगे, डहरा विय जे सुयबुद्धोववेया ।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ३

अन्वयार्थ —(एगे) बहुत से मुनि वयोवृद्ध होने पर भी (पगईइ-पगईए) स्वभाव से (मदावि) मदबुद्धि (भवति) होते हैं (य) तथा (जे) बहुत मे (डहरावि) छोटी अवस्था वाले साधु भी (सुयबुद्धोववेया) शास्त्रो के ज्ञाता, एव बुद्धि-मान् होते हैं ज्ञान मे न्यूनाधिक होने पर भी, (आयारमता) सदाचारी और (गुणसुट्ठिअप्पा) मूलगुण उत्तरगुणो का सम्यक् पालन करने वाले गुरुजनो का अपमान न करना चाहिए क्योकि (सिहिरिव) जिस प्रकार अग्नि इधन को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार (जे हीलिया) गुरुजनो की हीलना उसके ज्ञानादि गुणो को (भास कुज्जा) नष्ट कर देती है अर्थात् गुरुजनो की आशातना करने से ज्ञानादि गुणो का नाश हो जाता है ॥३॥

जे यावि नाग डहरति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ ।
एवायरियपि हु हीलयतो, नियच्छई जाइपह खु मदो ॥४।

अन्वयार्थ —(जे यावि) जो कोई मूर्ख मनुष्य (डह-रति) यह छोटा है इस प्रकार (नच्चा) जानकर (नाग) साप को (आसायए) छेडता है-लकडी आदि से उसे सताता

है (हु) तो (से) वह (अहियाय) उस सताने वाले के लिए अहितकारी (होइ) होता है अर्थात् उसे काट खाता है (एव) उसी प्रकार (आयरियपि) आचार्य महाराज को (हीलयंतो) हीलना करने वाला (मदो-मंदे) मन्द बुद्धि शिष्य (खु) निश्चय ही (जाइपह) एकेन्द्रियादि जातियों में (नियच्छई) चला जाता है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में फस कर अनन्त ससारी बन जाता है ॥४॥

आसीविसो वावि परं सुरुट्ठो, किं जीवनासाउ परं नु कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना अबोहि आसायण नत्थि मुक्खो ॥५

अन्वयार्थ — (आसीविसो) दृष्टिविष साप (परं) अत्यन्त (सुरुट्ठो वावि) कुपित हो जाने पर भी (जीवनासाउ) प्राणनाश से (परं) अधिक (किं नु कुज्जा) और क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ नही कर सकता किन्तु जो शिष्य (आयरिय पाया) पूज्यपाद आचार्य महाराज को (अप्पसन्ना) अप्रसन्न करता है वह शिष्य (आसायण) गुरु की आशातना करने से (अबोहि) मिथ्यात्व को प्राप्त होता है जिससे (पुण) फिर (नत्थिमुक्खो) उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ॥५॥

भावार्थ — सांप का काटा हुआ प्राणी एक ही दफा मरता है किन्तु आचार्य महाराज की आशातना करने वाले को बारम्बार जन्म मरण करना पड़ता है।

जो पावगं जलियमवक्कमिज्जा, आसीविसं वावि हु कोवइज्जा।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी, एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं ॥६॥

अन्वयार्थ.— जो अभिमानी शिष्य (गुरूणं) गुरु महा

राज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (जलिग्र) जलती हुई (पावग) अग्नि को (अवक्कमिज्जा) पैरो से कुचलकर बुझाना चाहता है (वावि) अथवा जो (आसीविस) दृष्टि-विष सर्प को (हु कोवइज्जा) कुपित करता है (वा) अथवा (जो) जो मूर्ख (जीवियट्ठी) जीने की इच्छा से (विस) हलाहल विष को (खायइ) खाता है ॥६॥

सिया हु से पावय नो डहिज्जा,
आसीविसो वा कुवियो न भक्खे।
सिया विस हलाहल न मारे,
न यावि मुक्खो गुरु हीलणाए ॥७॥

अन्वयार्थ— (सिया हु) यदि कदाचित् (से) अग्नि के ऊपर पैर रखने वाले पुरुष के पैर को (पावय) अग्नि (नो डहिज्जा) न जलावे (वा) अथवा (कुविओ) कुपित हुआ (आसीविसो) दृष्टि-विष सर्प भी (न भक्खे) न काटे (सिया) कदाचित् (हलाहल) हलाहल नामक (विस) तीव्र विष भी (न मारे) अपना असर न दिखावे अर्थात् खाने वाले को न मारे। यद्यपि ये सब बातें असम्भव है तथापि विद्याबल एव मन्त्रबल से यदि कदाचित् सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरु हीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले को (न यावि मुक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नही हो सकता ।७॥

जो पव्वय सिरसा भित्तुमिच्छे,
सुत्त व सीह पडिबोहइज्जा।

जो वा दए सत्ति अग्गे पहार,
एसोवमाऽऽसायणया गुरूण ॥८॥

अन्वयार्थ —जो दुर्बुद्धि शिष्य (गुरूण) गुरु महाराज की (आसायणया) आशातना करता है (एसोवमा) वह उस पुरुष के समान है (जो) जो (पव्वय) पर्वत को (सिरसा) मस्तक की टक्कर से (भित्तु) फोड़ना (इच्छे) चाहता है (व) अथवा (सुत्त) सोते हुए (सीह) सिंह को (पडिबोहइज्जा) लात मारकर जगाता है (वा) अथवा (जो) जो मूल (सत्ति अग्गे) तीक्ष्ण तलवार की धार को धार पर (पहार दए) मुष्टि का प्रहार करता है ॥८॥

भावार्थ — उपरोक्त काम करने वाला पुरुष अपना ही अहित करता है इसी तरह गुरु की आशातना करने वाला अविनीत शिष्य भी अपना ही अहित करता है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे,
सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदिज्ज व सत्ति अग्गं,
न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥

अन्वयार्थ — (सिया हु) यदि कदाचित कोई वासु देवादि शक्तिशाली पुरुष (सीसेण) मस्तक की टक्कर से (गिरिं पि) पर्वत को भी (भिंदे) चूर-चूर कर दे (हु) अथवा (सिया) कदाचित् (कुविओ) लात मार कर जगाने से कुपित हुआ (सीहो) सिंह भी (न भक्खे) न खावे (व) अथवा (सिया) कदाचित् (सत्ति अग्गं) तलवार की तीक्ष्ण धार पर मुष्टि प्रहार करने पर भी (न भिंदिज्ज) हाथ

न कटे अर्थात् ये असम्भव बातें सम्भव हो भी जाय किन्तु (गुरुहीलणाए) गुरु की हीलना करने वाले दुर्बुद्धि शिष्य को (न याविमुक्खो) कभी भी मोक्ष प्राप्त नही हो सकता ॥६॥

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अवोहि आसायण नत्थि मुक्खो।
तम्हा अणावाहसुहाभिकखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा ॥१०॥

अन्वयार्थ (आयरियपाया) पूज्य पाद आचार्य महाराज को (आसायण) आशातना करके (पुण अप्पसन्ना) उन्हे अप्रसन्न करने वाले पुरुष को (अवोहि) मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है जिससे (नत्थि मुक्खो) वह मोक्ष सुख का अधिकारी नही हो सकता (तम्हा) इसलिए (अणवाहसुहाभिकखी) मोक्ष के अनाबाध सुख की चाह रखने वाला पुरुष (गुरुप्पसायाभिमुहो) गुरु महाराज को प्रसन्न करने मे (रमिज्जा) सदा प्रयत्नशील रहे ॥१०॥

जहाहिअग्गी जलण नमसे, नाणाहुईमत पयाभिसित्त।
एवायरिय उवचिट्ठइज्जा, अणत नाणोवगओऽवि सतो ॥११॥

अन्वयार्थ —(जहा) जिस प्रकार (आहिअग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (नाणहुईमन) पयाभिसित्त) नाना प्रकार की घृतादि की आहुतियो से तथा वेदमन्त्रो से सस्कार की हुई (जलण) यज्ञ की अग्नि को (नमसे) नमस्कार करता है (एव) उसी प्रकार (अणतनाणोवगओऽवि) अनन्त ज्ञान सम्पन्न (सतो) हो जाने पर भी शिष्य को (आयरिय)

आचार्य महाराज की (उपचिट्ठइज्जा) विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिए ॥११॥

जस्सतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणइय पउंजे ।
सक्कारए सिरसा पजलीओ, कायग्गिरा भो मणसा य निच्च १२

अन्वयार्थ.— (भो) गुरु महाराज शिष्य को कहते हैं कि-शिष्य का यह कर्तव्य है कि (जस्सतिए) जिन गुरु महाराज के पास (धम्मपयाइ) धर्म शास्त्रों की (सिक्खे) शिक्षा प्राप्त करे (तस्सतिए) उनकी सदा (वेणइय) विनय-भक्ति (पउजे) करे (पजलीओ) दोनो हाथ जोडकर (सिरसा) और मस्तक झुकाकर नमस्कार करे (य) और (कायग्गिरा मणसा) मन वचन काया से (निच्च) सदा (सक्कारए) सत्कार करे अर्थात् गुरु के आने पर खड़े होना, उन्हें वन्दना करना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना आदि कार्यों से उनका विनय करे ॥१२।

लज्जा दया सजम बभचेर, कल्लाणभागिस्स विसोहिठाण।
जे मे गुरू सययमणुसासयति, तेऽहं गुरू सयय पूययामि ॥१३॥

अन्वयार्थ — (लज्जा) अधर्म के प्रति लज्जाभय (दया) दया अनुकम्पा (सजम) सयम और (बभचेर) ब्रह्मचर्य ये चारो (कल्लाणभागिस्स) अपनी आत्मा का हित चाहने वाले मुनि के लिए (विसोहिठाण) विशुद्धि के स्थान हैं। इसलिए शिष्य को यह भावना रखनी चाहिए कि (जे) जो (गुरू) गुरु महाराज (मे) मुझे इनकी (सयय) सदा (अणुसासयति) शिक्षा देते हैं (तेऽहं-तहि गुरु) उन गुरु महाराज की मुझे (सयय) सदा (पूययामि) विनय भक्ति करनी चाहिए ॥१३॥

जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासई केवल भारह तु ।
एवायरियो सुयसीलबुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इदो ॥१४॥

अन्वयार्थ — (जहा) जिस प्रकार (निसते) रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् प्रात काल (तवणच्चिमाली) तेज से देदीप्यमान सूय अपनी किरणो से (केवलभारह तु) सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को (पभासई) प्रकाशित करता है (एव) उसी प्रकार (आयरियो) आचाय महाराज (सुयसील बुद्धिए) अपने ज्ञान, चारित्र तथा तात्विक उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और (व) जिस प्रकार (सुरमज्झे) देवो मे (इदो) इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य महाराज भी साधुओ के बीच मे (विरायई) शोभित होते हैं ॥१४॥

जहा ससी कोमुइ जोग जुत्तो नक्खत्त तारागण परिवुडप्पा ।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जहा) जिस प्रकार (नक्खत्त तारागण परिवुडप्पा) नक्षत्र और ताराओ के समूह से घिरा हुआ (कोमुइ जोगजुत्तो) कार्तिक पूणमासी को उदय हुआ (ससी) चन्द्रमा (अब्भमुक्के) बादलो से रहित (विमले) अतीव निमल (खे) आकाश मे (सोहई) शोभित होता है (एव) इसी प्रकार (गणी) आचाय महाराज (भिक्खुमज्झे) साधु समूह के मध्य मे (सोहइ) शोभित होते हैं ॥१५॥

महागरा आयरिया महेसी, समाहि जोगे सुयसीलबुद्धिए ।
सपाविउकामे अणुत्तराइ, आराहए तोसइ धम्मकामी ॥१६॥

अन्वयार्थ —(अणुत्तराइ) उत्कृष्ट ज्ञानादि भाव रत्नो

को (संपाविउकामे) प्राप्त करने की इच्छा वाला (धम्मकामी) श्रुतचारित्र रूप धर्म का अभिलाषी मुनि (महागरा) ज्ञानादि रत्नों के भण्डार (सुयमीलबुद्धिए) श्रुत चारित्र और बुद्धि से युक्त (समाहि जोगे) समाधियत (महतो) महर्षि (आयरिया) आचार्य महाराज की (आराहए) आराधना करे और (तोसइ) उनको विनय-भक्ति करके उन्हें प्रसन्न रखे ॥१६॥

सुच्चाण मेहावी सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो ।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे, से पावई सिद्धिमणुत्तरं ॥१७॥
त्ति बेमि ।

अन्वयार्थ — (मेहावी) गुरु वचनों को यथार्थ रूप से धारण करने की बुद्धि वाला विनीत शिष्य (सुभासियाइं) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाये हुए विनयाराधना के शिक्षाप्रद वचनों को (सुच्चाण) सुनकर (अप्पमत्तो) प्रमाद रहित होकर (आयरियं) आचार्य महाराज की (सुस्सूसए) सेवा शुश्रूषा करे । इस प्रकार सेवा करने से (से) वह विनीत शिष्य (अणेगे) अनेक (गुणे) सद्गुणों को (आराहइत्ताण) प्राप्त करके (मणुत्तरं) उत्तम (सिद्धिं) सिद्धि गति को (पावइ) प्राप्त होता है ॥१७॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का
दूसरा उद्देशा

मूलाउ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधाउ पच्छा समुविंति साहा ।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ सि पुप्फं च फलं रसो य ॥१॥

अन्वयार्थ — (दुमस्स) वृक्ष के (मूलाउ) मूल से (खधप्पभवो) स्कन्ध-धड उत्पन्न होता है (पच्छा) इसके बाद (खधाउ) स्कन्ध से (साहा) शाखाए (समुविंति) उत्पन्न होती हैं (साहाप्पसाहा) शाखाओ से प्रशाखाए-छोटी छोटी डालियाँ (विरुहति) उत्पन्न होती हैं और उनसे (पत्ता) पत्ते निकलते हैं (तओ) इसके बाद (सि से) उस वृक्ष के क्रमश (पुप्फ) फूल (च) और (फल) फल (य) और (रसो) रस उत्पन्न होता है ॥१॥

एव धम्मस्स विणओ, मूल परमो से मुक्खो ।
जेण कित्ति सुय सिग्घ, नीसेस चाभिगच्छइ ॥२॥

अन्वयार्थ — (एव) इसी प्रकार (धम्मस्स) धर्मरूपी वृक्ष का (मूल) मूल (विणओ) विनय है और (से) उसका (परमो) सर्वोत्कृष्ट फल (मुक्खो) मोक्ष है (जेण) उस विनय रूपी मूल द्वारा विनयवान् शिष्य इस लोक में (कित्ति) कीर्ति और (सुय) द्वादशाङ्ग रूप श्रुतज्ञान को (अभिगच्छइ) प्राप्त होता है (च) और-महापुरुषो द्वारा की गई (नीसेस) परम (सिग्घ) प्रशसा को प्राप्त करता है । तत्पश्चात् क्रमश अन्त मे नि श्रेयसरूपी मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है ॥२॥

जे य चडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीअप्पा, कट्ठ सोयगय जहा ॥३॥

अन्वयार्थ — (जहा) जिस प्रकार (सोयगय) जल के प्रवाह मे पडा हुआ (कट्ठ) काष्ठ इधर-उधर गोते खाता है इसी प्रकार (जे) जो मनुष्य (चड) क्रोधी (थद्धे)

अभिमानी (दुव्वाई) कठोर तथा अहितकारी वचन बोलने वाला (नियडी) कपटी (सढे) धूर्त (य) और (अविणी अप्पा) अविनीत होता है (से) वह (वुज्झइ) चतुर्गति रूप ससार के अनादि प्रवाह में बहता रहता है ॥३॥

विणय पि जो उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्व सो सिरिमिज्जति, दडेण पडिसेहए ॥४॥

अन्वयार्थ — (उवाएणं) प्रिय वचनादि किसी उपाय से आचार्य महाराज द्वारा (विणयपि-विणयम्मि) विनय धर्म की शिक्षा के लिए (चोइओ) प्रेरित किया जाने पर (जो) जो (नरो) अविनीत शिष्य (कुप्पई) क्रोध करता है (सो) मानो वह (इज्जति-एज्जति) अपने घर मे आती हुई (दिव्व) दिव्य अलौकिक (सिरिं) लक्ष्मी को (दडेण) डंडे से मार कर (पडिसेहए) वापिस घर से बाहर निकालता है ॥४॥

तहेव अविणीअप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसंति दुहमेहता आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥

अन्वयार्थ -- (तहेव) दृष्टान्त द्वारा अविनय के दोष बताये जाते हैं यथा- (उववज्झा) राजा-महाराजाओं के सवारी करने योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (अविणी-अप्पा) अविनीतता के कारण अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन न करने के कारण (आभिओगमुवट्ठिया) भार ढोते हुए (दुहमेहता) और अनेक प्रकार का दुख पाते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥५॥

तहेव सुविणी अप्पा, उववज्झा हया गया ।
दीसंति सुहमेहता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥६॥

अन्वयार्थ — (तहेव) दृष्टान्त द्वारा विनय के गुण बताये जाते हैं यथा-(सुविणीअप्पा) स्वामी की आज्ञा का पालन करना आदि की अच्छी शिक्षा पाये हुए (उववज्झा) राजा महाराजाओ के सवारी योग्य (गया) हाथी (हया) घोडे (इड्डिपत्ता) नाना प्रकार के आभूषणो से सुसज्जित (महायसा) प्रशसा प्राप्त महायशस्वी (सुहमेहता) अनेक प्रकार का सुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ॥६।

तहेव अविणीअप्पा, लोगम्मि नरनारिओ।
दीसति दुहमेहता, छाया ते विगलिदिया ।७॥

अन्वयार्थ — (तहेव) जिस प्रकार तिर्यंचो के विषय मे विनय और अविनय के गुण, दोष बताये गये हैं उसी प्रकार अब मनुष्यो के विषय मे बताये जाते हैं यथा-(लोगम्मि-लोगसि) इस लोक मे जो (नरनारिओ) पुरुष और स्त्रियाँ (अविणीअप्पा) अविनीत होते हैं (ते) वे (छाया) कोडे आदि की मार से व्याकुल तथा (विगलिदिया) नाक, कान आदि इन्द्रियो के काट दिये जाने से विरूप होकर (दुहमेहता) नाना प्रकार के दुख भोगते हुए (दीसति) देखे जाते हैं ।७॥

दड सत्थपरिजुण्णा, असब्भवयणेहि य ।
कलुणा विवन्नच्छदा, खुप्पिवास परिगया ॥८॥

अन्वयार्थ —अविनीत स्त्री, पुरुष (दडसत्थपरिजुण्णा) दडे और शस्त्रो की मार से व्याकुल (असब्भवयणेहि) कठोर वचनो से तिरस्कृत (कलुणा) दया के पात्र (य) और (विवन्नच्छदा) पराधीन अतएव (खुप्पिवास सा-इपरि-

गया) भूख-प्यास से व्याकुल होकर दुःख पाते देखे जाते हैं ॥८॥

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नरनारिओ ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥९॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (लोगंसि) लोक में (नरनारिओ) जो स्त्री, पुरुष (सुविणीअप्पा) विनीत होते हैं वे सब (इड्ढिं) ऋद्धि को (पत्ता) प्राप्त (महायसा) महायशस्वी (सुहमेहंता) नाना प्रकार के सुख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ॥९॥

तहेव अविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥१०॥

अन्वयार्थ —(तहेव) जिस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यों के विषय मे विनय और अविनय के गुण दोष बताये गये हैं उसी प्रकार अब देवो के विषय में बताया जाता है यथा- (अविणीअप्पा) जो जीव अविनीत होते हैं वे आयुष्य पूर्ण करके (देवा) वैमानिक अथवा ज्योतिषी देव (जक्खा) यक्षादि व्यन्तर देव (य) तथा भवनपति आदि गुह्यक देव होने पर भी ऊंची पदवी न पाकर (आभिओगमुवट्ठिया) बड़े देवो के सेवक बनकर उनकी सेवा करते हुए तथा (दुहमेहंता) नाना प्रकार के दुःख भोगते हुए (दीसंति) देखे जाते हैं ॥१०॥

तहेव सुविणीअप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा ॥११॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार (सुविणीअप्पा) जो जीव सुविनीत होते हैं वे (देवा) देव (जक्खा) यक्ष (य) और (गुज्झगा) भवनपति जाति के गुह्यक देव होकर उनमे भी (इड्ढि पत्ता) समृद्धिशाली तथा (महायसा) महायशस्वी होते हैं और (सुहमेहता) अलौकिक सुख भोगते हुए (दीसंनि) देखे जाते हैं ।।११।।

जे आयरिय उवज्झायाण, सुस्सूसावयणकरा ।
तेसिं सिक्खा पवड्ढति, जलसित्ता इव पायवा ।।१२।।

अन्वयार्थ —(जे) जो शिष्य (आयरिय उवज्झायाण) आचार्य और उपाध्यायो की (सुस्सूसावयणकरा) सेवा-शुश्रूषा करते हैं और उनके वचनो को मानते हैं (तेसिं) उनकी (सिक्खा) शिक्षा (जलसित्ता) जल से सीचे हुए (पायवा इव) वृक्षो की तरह (पवड्ढति) दिन पर दिन बढती है ।।१२।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पाणे उणिआणि य ।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इह लोगस्स कारणा ।।१३।।

अन्वयार्थ — (गिहीणो) गृहस्थ लोग (इह लोगस्स कारणा) इह लौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए (अप्पणट्ठा) अपने लिए (वा) अथवा (परट्ठा) पुत्र-पौत्रादि के (उवभोगट्ठा) उपयोग मे आने के लिए (सिप्पा) शिल्पकला (य) और (णेउणिआणि) व्यवहार कुशलता आदि सीखते हैं ।।१३।।

जेण बध वह घोर, परियाव च दारुण ।
सिक्खमाणा नियच्छति, जुत्ता ते ललिइंदिया ।।१४।।

अन्वयार्थ — (जेण) लौकिककला को सीखने में (जुत्ता) लगे हुए (ललिईदिया) सुकोमल शरीर वाले (ते) श्रीमतों के पुत्र तथा राजकुमार आदि भी (सिक्खमाणा) शिक्षा पाते समय (घोर) दुस्सह (वह) वध (बंध) बन्धन (च) और (दारुण) कठोर (परियाव) परितापना आदि कष्टों को (नियच्छंति) सहन करते हैं ॥१४।

तेऽवि तं गुरुं पूयंति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारंति, नमसंति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो ॥१५॥

अन्वयार्थ — (तेऽवि) वे सुकोमल शरीरवाले राजकुमार आदि इतना कष्ट पाने पर भी (तस्स) उस (सिप्पस्स) शिल्पकला को (कारणा) सीखने के लिए (तुट्ठा) प्रसन्नतापूर्वक (तं गुरुं) उस शिल्पशिक्षक गुरु की (निद्देसवत्तिणो) आज्ञा का पालन करते हैं (पूयंति) वस्त्र, आभूषणा द्वारा सेवा करते हैं (सक्कारंति) सत्कार-सम्मान करते हैं और (नमसंति) नमस्कार करते हैं ॥१५।

किं पुण जे सुयग्गाही, अणंत हियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं नाइवत्तए ॥१६॥

अन्वयार्थ — जब लौकिक विद्या को सीखने के लिए भी राजकुमार आदि इस प्रकार गुरु की विनयभक्ति करते हैं तो फिर (जे) जो (भिक्खू) मुनि (सुयग्गाही) आगमों के गूढ़ तत्वों के जिज्ञासु हैं तथा (अणंत हियकामए) मोक्ष सुख या प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं (किं पुण) उनका तो कहना ही क्या ! अर्थात् उन्हें तो धर्माचार्य का विनय विशेष रूप से करना ही चाहिए। (तम्हा) इसलिए (आयरिया) आचार्य महाराज (जं) जो आज्ञा (वए) फरमावें

(त) उस आज्ञा का (नाइवत्तए) उल्लघन नही करना चाहिए ॥१६॥

> नीय सिज्ज गइ ठाण, नीय च आसणाणि य ।
> नीय च पाए वदिज्जा, नीय कुज्जा य अजलि ॥१७॥

अन्वयार्थ — विनीत शिष्य को चाहिए कि वह (सिज्ज) अपनी शय्या (ठाण) अपने बैठने का स्थान (च) और (आसणाणि) आसन (नीय) गुरु की अपेक्षा नीचा रखे। (गई) चलते समय भी (नीय) गुरु के आगे-आगे न चले (च) और (नीय) नीचे झुककर (पाए) गुरु के चरणो में (वदिज्जा) वन्दना करे (य) और (नीयं) नीचे झुककर (अजलि कुज्जा) हाथ जोडकर नमस्कार करे।१७।

> सघट्टइत्ता काएण, तहा उवहिणामवि ।
> खमेह अवराह मे, वइज्ज न पुणुत्ति य ॥१८॥

अन्वयार्थ - यदि कभी असावधानी से (काएण) गुरु महाराज के शरीर के साथ (तहा) तथा (उवहिणामवि) उनके धर्मोपकरणों के साथ (सघट्टाइत्ता) सघट्टा-स्पर्श हो जाय (वइज्ज) तो शिष्य को उसी समय कहना चाहिए कि हे भगवन्! (मे) मेरा (उवराह) यह अपराध (खमेह) क्षमा करो (य) और (न पुणुत्ति) आज पीछे ऐसा कभी नहीं करूगा ॥१८॥

> दुग्गओ वा पओएण, चोइओ वहई रह ।
> एव दुबुद्धि किच्चाण, वुत्तो वुत्तो पकुव्वई ॥१९॥

अन्वयार्थ - (वा) जिस प्रकार (दुग्गओ) दुर्बल-गलियार बैल (पओएण) चाबुक आदि की (चोइओ) मार पडने पर ही (रह) गाडी को (वहई) खीचता है (एव)

उसी प्रकार (दुबुद्धि) दुष्ट बुद्धि अविनीत शिष्य भी (वुत्तो वुत्तो) गुरु के बारम्बार कहने पर ही (किच्चाण) उनके कार्य को (पकुव्वई) करता है ॥१६॥

आलवंते लवंते वा, न निसिज्जाइ पडिस्सुणे ।
मुत्तूणं आसण धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ।२०॥

अन्वयार्थ —(आलवंते) गुरु महाराज शिष्य को एक बार बुलावें (वा) अथवा (लवंते) बारबार बुलावें तो (धीरो) विनयवान् शिष्य को चाहिए कि वह (निसिज्जाइ) अपने आसन पर बैठे-बैठे ही (न पडिस्सुणे) गुरु महाराज की आज्ञा को सुनकर उत्तर न दे किन्तु (आसण) झटपट आसन को (मुत्तूण) छोड़कर खड़ा हो जाय एवं सावधान होकर गुरु महाराज की आज्ञा को सुने और (सुस्सूसाए) विनयपूर्वक (पडिस्सुणे) उसका उत्तर दे ।२०॥

काल छंदोवयारं च, पडिलेहित्ताणहेउहिं ।
तेण तेण उवाएण, तं तं संपडिवायए ॥२१॥

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को चाहिये कि वह (कालं) द्रव्य क्षेत्र काल भाव को (च) और (छंदोवयारं) गुरु महाराज के अभिप्राय को (हेउहिं) अपनी तर्कणा शक्ति से (पडिलेहित्ताण) जानकर (तेण तेण तेहिं तेहिं) उन-उन (उवाएणं उवाएहिं) उपायों से (तं तं) उन उन कार्यों को (संपडिवायए) सम्पादित करे ॥२१॥

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स य ।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥२२॥

अन्वयार्थ — (अविणीयस्स) अविनीत पुरुष के (विवत्ती) सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं (य) और (विणि

यस्स) विनीत पुरुष को (सपत्ती) सद्‌गुणो की प्राप्ति होती है (एय) ये (दुहग्रो) दोनो बातें (जस्स) जिसने (नाय) अच्छी तरह जान ली है (से) वही (सिक्ख) शिक्षा (अभिगच्छइ) प्राप्त कर सकता है ।।२२।।

जे यावि चंडे मइइड्ढिगारवे, पिसुणे नरे साहसहीणपेसणे।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए, असविभागी न हु तस्स मुक्खो २३

अन्वयार्थ — (जे यावि) जो (नरे) पुरुष (चड) क्रोधी (मइइड्ढिगारवे) बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान करने वाला (पिसुणे) चुगलखोर (साहस) साहसी-बिना सोचे-विचारे काय करने वाला (हीणपेसणे) गुरु की आज्ञा न मानने वाला (अदिट्ठधम्मे) धर्माचरण से रहित (विणए अकोविए) अविनीत और (असविभागी) असविभागी होता है (तस्स) उसे (मुक्खो) मोक्ष (न हु) प्राप्त नही हो सकता ।।२३।।

निद्देसवित्ती पुण जे गुरुण, सुअत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओघमिण दुरुत्तर, खवित्तु कम्म गइमुत्तमं गय
।।२४।। त्ति बेमि ।।

अन्वयार्थ — (जे) जो (गुरूण) गुरु महाराज की (निद्‌सवित्ती) आज्ञा का यथावत् पालन करने वाले हैं (जे सुअत्थधम्मा) तथा जो श्रुतधर्म के गूढ तत्त्वो के रहस्यो को जानने वाले हैं (पुण) और (विणयम्मि कोविया) विनय पालन मे चतुर होते हैं (ते) वे (इण) इस (दुरुत्तर) दुस्तर (ओघ) ससार रूपी समुद्र को (तरित्तु) तिर कर और (कम्म) कर्मों का (खवित्तु) क्षय करके (उत्तम)

सर्वोत्तम (गइ) सिद्धगति को (गय) प्राप्त करते हैं तथा उपरोक्त गुणों को धारण करने वाले पुरुषों ने गत काल में सिद्धगति प्राप्त की है और आगामी काल में ही प्राप्त करेंगे ॥२४॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का तीसरा उद्देशा

आयरियं अग्गिमिवाहियग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा ।
आलोइयं इंगियमेव नच्चा, जो छंदमाराहयई स पुज्जो ॥१॥

अन्वयार्थ — (इव) जिस प्रकार (आहियग्गी) अग्निहोत्री ब्राह्मण (अग्गि) अग्नि को साधना करने में सावधान रहता है उसी प्रकार (जो) जो शिष्य (आयरियं) आचार्य महाराज को (सुस्सूसमाणो) सेवा शुश्रूषा करने में (पडिजागरिज्जा) सदा सावधान रहता है तथा (आलोइयं) उनकी दृष्टि और (इंगियमेव) इंगिताकार-चेष्टा को (नच्चा) जानकर (छंद) आचार्य महाराज के अभिप्रायों के अनुकूल (आराहयई) कार्य करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१॥

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं ।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासायई स पुज्जो ॥२॥

अन्वयार्थ — जो शिष्य (आयारमट्ठा) आचार प्राप्ति के लिए (विणयं) गुरु महाराज की विनय-भक्ति (पउंजे) करता है और (सुस्सूसमाणो) उनकी सेवा करता हुआ (वक्कं) उनकी आज्ञा को (परिगिज्झ) स्वीकार करता है

एव (जहोवइट्ठ) उनकी इच्छा के अनुसार (अभिकखमाणो) कार्य करता है (सु-च) और जो (गुरु) गुरु महाराज की (नासाययई) कभी भी आशातना नहीं करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥२।

रायणिएसु विणय पउजे, डहराऽवि य जे परियायजिट्ठा ।
नीयत्तणे वट्टइ सच्चवाई, उवायव, वक्ककरे स पुज्जो ॥३।

अन्वयार्थ — (जे) जो साधु (रायणिएसु) रत्नाधिको की सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रय से बडे, मुनियो की (विणय) विनय-भक्ति (पउजे) करता है (य) इसी प्रकार (डहराऽवि) जो मुनि अवस्था मे छोटे हैं किन्तु (परियायजिट्ठा) दीक्षा मे बडे हैं उनकी भी विनय-भक्ति करता है (नीयत्तणे) गुरुजनो के सामने नम्रभाव से (वट्टइ) रहता है (सच्चवाई) हितमित सत्य बोलता है (उवायव) सदा गुरु की सेवा मे रहता हुआ (वक्ककरे) उनकी आज्ञा का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥३।

अन्नायउछ चरई विसुद्ध , जवणट्ठया समुयाण च निच्च।
अलद्धुय नो परिदेवइज्जा, लद्धु न विकत्थई स पुज्जो ।४।

अन्वयार्थ — जो साधु (निच्च) सदा (जवणट्ठया) सयमयात्रा के निवाह के लिए (समुयाण) समुदानिक गोचरी करके (अन्नायउछ) अज्ञात कुल से थोडा थोडा (विसुद्ध) निर्दोष आहार (चरई) लेता है (च) और (अलद्धुय) यदि किसी समय आहार न मिले तो (नो परिदेवइज्जा) खेद नही करता तथा (लद्धु) इच्छानुसार आहार के

मिलने पर (न विकत्थई) प्रशंसा नहीं करना (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ।४।।

संथारसिज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभेऽविसंते।
जो एवमप्पाणभितोसइज्जा, संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ॥५॥

अन्वयार्थ — (जो) जो साधु (संथारसिज्जासण भत्तपाणे) संथारा, शय्या, आसन और आहार-पानी के (अइलाभेऽविसंते) अधिक मिलते रहने पर भी (अप्पिच्छया) अल्प इच्छा रखता है एवं उनमें मूर्च्छाभाव नहीं रखता हुआ (संतोसपाहन्नरए) सन्तोष भाव रखता है (एवं) इस प्रकार जो साधु (अप्पाण) अपनी आत्मा को (अभितोसइज्जा) सभी प्रकार से सन्तुष्ट रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥५॥

सक्का सहेउं आसाइ कंटया, अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहिज्ज कंटए, वईमए कन्नसरे स पुज्जो ॥६॥

अन्वयार्थ — (उच्छहया) धनादि की प्राप्ति की (आसाइ) आशा से (नरेणं) मनुष्य (अओमया) लोह के (कंटया) तीक्ष्ण बाणों को (सहेउं) सहन करने में (सक्का) समर्थ हो जाता है (उ) किन्तु (कन्नसरे) कानों में बाणों की तरह लगने वाले (वईमए) कठोर वचन रूपी (कंटए) बाणों को सहन करना बहुत कठिन है फिर भी जो उन्हें (अणासए) किसी भी आशा के बिना (सहिज्ज) समभाव पूर्वक सहन कर लेता है (स) वह (पुज्जो) वास्तव में पूज्य है ॥६॥

मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया, अओमया तेऽवि तओ सुउद्धरा।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥७॥

अन्वयार्थ — (अग्रोमया) लोह के (कटया) कांटे-वाण (उ) तो (मुहुत्तदुक्खा) थोडे काल तक ही दुख-दायी (हवति) होते हैं और (तेऽवि) वे (तग्रो) जिस अङ्ग में लगे हैं उस अङ्ग में से (सुउद्धरा) योग्य वैद्य द्वारा आसानी से निकाले भी जा सकते हैं किन्तु (वायादुरुत्ताणि) कटु वचन रूपी वाणो का (दुरुद्धराणि) निकलना बहुत मुश्किल है-अर्थात् हृदय में चुभ जाने के बाद उनका निकलना दु साध्य है क्योंकि कठोर वचनो का प्रहार हृदय को बीन्ध कर आर पार हो जाता है (वेराणुबंधीणि) इस लोक और परलोक मे वे वैर-भाव की परम्परा को बढाने वाले हैं तथा-(महब्भयाणि) नरकादि नीच गतियो मे ले जाने के कारण वे महाभय के उत्पन्न करने वाले हैं ॥७॥

समावयंता वयणाभिघाया, कन्न गया दुम्मणिय जणंति ।
धम्मुत्ति किच्चा परमग्गसूरे, जिइंदिए जो सहई स पुज्जो ।८।

अन्वयार्थ — (समावयता) समूह रूप से आते हुए (वयणाभिघाया) कठोर वचन रूपी प्रहार (कन्न गया) कान मे पडते ही (दुम्मणिय) दौर्मनस्य भाव (जणंति) उत्पन्न कर देते हैं अर्थात् कटु वचनो को सुनते ही मन की भावना दुष्ट हो जाती है किन्तु (धम्मुत्ति) 'क्षमा करना साधु का धर्म है' ऐसा (किच्चा) मान कर (जो) जो साधु उन कठोर वचन रूपी वाणो को (सहई) समभावपूर्वक सहन कर लेता है वह (परमग्गसूरे) वीर शिरोमणि है (जिइंदिए) जितेन्द्रिय है (स) ऐसा साधु (पुज्जो) जगत्पूज्य होता है ।.८.।

अवण्णवाय च परम्मुहस्स,
पच्चक्खग्रो पडिणीय च भास ।

ओहारिणि अप्पियकारिणि च,
भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो ॥९॥

अन्वयार्थ — जो साधु (परम्मुहस्स) किसी की पीठ पीछे (च) तथा (पच्चक्खओ) सामने (अवण्णवाय) निंदा नहीं करता (च) और (पडिणीयं) पर पीडाकारी (ओहारिणि-ओहारणि) निश्चयकारी (च) और (अप्पियकारिणि) अप्रियकारी (भासं) भाषा (सया) कभी (न भासिज्ज) नहीं बोलता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥९॥

अलोलुए अक्कुहए अमाई,
अपिसुणे यावि अदीणवित्ती ।
नो भावए नोऽवि य भावियप्पा,
अकोउहल्ले य सया स पुज्जो ॥१०॥

अन्वयार्थ —जो साधु (अलोलुए) जिह्वा लोलुपी नहीं है एवं किसी प्रकार का लोभ-लालच नहीं करता (अक्कुहए) मंत्र तंत्रादि का प्रयोग भी नहीं करता (अमाई) जो निष्कपट है (अपिसुणे) जो किसी की चुगली नहीं करता (यावि) तथा (अदीणवित्ती) भिक्षा न मिलने पर भी जो दीनता नहीं दिखलाता (य) और (नो भावए) जो दूसरों को प्रेरणा करके उनसे अपनी स्तुति नहीं करवाता और (नोऽवि भाविय अप्पा) न स्वयं अपने मुह से अपनी प्रशंसा करता है (य) और जो (सया) कभी (अकोउहल्ले) नाटक, खेल, तमाशे आदि देखने की इच्छा नहीं करता (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१०॥

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू
गिण्हाहि साहू, गुण मुंचऽसाहू ।

वियाणिया अप्पगमप्पएण,
जो राग दोसेहिं समो स पुज्जो ॥११॥

अन्वयार्थ — गुरु महाराज फरमाते हैं कि (गुणेहि) विनयादि गुणो को धारण करने से (साहू) साधु होता है और (अगुणेहि) अविनयादि दुर्गुणो से (असाहू) असाधु होता है अर्थात् साधुपना और असाधुपना गुणो और अव गुणो पर अवलम्बित है । अत हे शिष्यो ! (साहूगुण) साधु के योग्य गुणो को (गिण्हाहि) ग्रहण करो और (असाहू) असाधुगुणो को-अवगुणो को (मुच) छोड दो । इस प्रकार (जो) जो (अप्पएण) अपनी ही आत्मा द्वारा (अप्पग) अपनी आत्मा को (वियाणिया) समझा कर (राग दोसेहिं) राग द्वेष मे (समो) समभाव रखता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥११॥

तहेव डहर च महल्लग वा,
इत्थीं पुम पव्वइय गिहिं वा ।
नो हीलए नोऽवि य खिसइज्जा,
थभ च कोह च चए स पुज्जो ॥१२॥

अन्वयार्थ — (तहेव) इसी प्रकार जो साधु (डहर) बालक (च) और (महल्लग) वृद्ध की (इत्थी-इत्थी) स्त्री (वा) या (पुम) पुरुष की, (पव्वइय) साधु (वा) या (गिहिं) गृहस्थ को, किसी का भी (नो हीलए) एक बार हीलना-निन्दा नही करता (अवि य) तथा (नो खिसइज्जा) बार-बार हीलना निन्दा नही करता (च) तथा जो (थभ) अहकार (च) और (कोह) क्रोध को (चए) छोड देता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१२॥

जे माणिया सययं माणयंति,
जत्तेण कन्नं व निवेसयंति ।
ते माणए माणरिहे तवस्सी,
जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥१३॥

अन्वयार्थ — (जे) जो शिष्य (सययं) सदा (माणिया) गुरु महाराज को विनय भक्ति द्वारा सम्मानित करते हैं तो (माणयंति) गुरु महाराज भी विद्यादान द्वारा उन्हें योग्य बना देते हैं और (व) जिस प्रकार (कन्नं) माता-पिता अपनी कन्या का योग्य पति के साथ विवाह कर उसे गृहस्थ कुल में स्थापित कर देते हैं, उसी प्रकार गुरु महाराज भी (जत्तेण) प्रयत्नपूर्वक उन शिष्यों को (निवेसयंति) उच्च श्रेणी पर पहुंचा देते हैं (ते) ऐसे (माणरिहे) सम्माननीय उपकारी पुरुषों को (जिइंदिए) जो जितेन्द्रिय (सच्चरए) सत्यपरायण (तवस्सी) तपस्वी शिष्य (माणए) विनय भक्ति करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१३॥

तेसिं गुरूणं गुणसायराणं, सुच्चाण मेहावि सुभासियाइं ।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो ॥१४॥

अन्वयार्थ — (तेसिं) उन (गुणसायराणं) गुणों के सागर (गुरूणं) गुरु महाराज के (सुभासियाइं) सुभाषित उपदेश को (सुच्चाण) सुनकर (मेहावि) जो बुद्धिमान् (मुणी) साधु (पंचरए तिगुत्तो) पांच महाव्रत और तीन गुप्तियों से युक्त होकर (चउक्कसायावगए) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों का छोड़ देता है और (चरे) गुरु महाराज की विनय भक्ति करता हुआ शुद्ध संयम का पालन करता है (स) वह (पुज्जो) पूज्य होता है ॥१४॥

गुरुमिह सयय पडियरियमुणी,
जिणमयनिउणे अभिगमकुसले ।
धुणिय रयमल पुरेकडं,
भासुरमउल गइ वइ ।।१५।। ति वेमि ।।

अन्वयार्थ — (जिणमयनिउणे) निर्ग्रन्थ प्रवचनों का ज्ञाता (अभिगमकुसले) ज्ञान कुशल विनीत एव साधुओं की विनय वैयावच्च करने वाला (मुणी) मुनि (इह) इस लोक मे (गुरु) गुरु महाराज की (सयय) निरन्तर (पडियरिय) सेवा करके (पुरेकड) पूर्वकृत (रयमल) कमरज को (धुणिय) क्षय करके (भासुर) अनन्त ज्ञान ज्योति से देदीप्यमान (अउल) सर्वोत्कृष्ट (गइ) सिद्ध गति को (वईगर्य) प्राप्त करता है ।।१५।। (त्ति वेमि) पूर्ववत् ।

"विनय समाधि" नामक नवम अध्ययन का चौथा उद्देशा

सुय मे आउस तेण भगवया एवमक्खाय-इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नता । कयरे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नत्ता ? इमे खलु ते थेरेहिं भगवतेहिं चत्तारि विणय समाहिट्ठाणा पन्नता । तजहा १ विणयसमाही २ सुयसमाही ३ तवसमाही ४ आयारसमाही ।

अन्वयार्थ —श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी स कहते हैं कि (आउस) हे आयुष्मन् जम्बू ! (तेणं भगवया) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने (एव) इस प्रकार

(अक्खायं) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुयं) सुना है। यथा-(इह खलु) जैन सिद्धान्त में (थेरेहिं) स्थविर (भगवंतेहिं) भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवंतेहिं) उन स्थविर भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे चत्तारि चार भेद (कयरे) कौन से (पन्नत्ता) बतलाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि- हे आयुष्मन् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवंतेहिं) भगवन्तों ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। (तंजहा) जैसे कि- (विणयसमाही) विनय समाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि।

विणए सुए य तवे, आयारे निच्चं पंडिया।
अभिरामयंति अप्पाणं जे भवंति जिइंदिया ॥१॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (जिइंदिया)
(विणए) विनय में (सुए) श्रुत में (तवे)
और (आयारे) आचार में (निच्चं) सदा
आत्मा को (अभिरामयंति) लगाये रखते
हैं सच्चे पण्डित (भवंति) कहलाते हैं ॥१॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही
अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ २ सम्मं संपडिवज्जइ
४ न य भवइ अत्तसंपग्गहिए चउत्थं पयं
इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ — (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तजहा) जैसे कि – १ (अणुसासिज्जंतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा शुश्रूषा करना एव उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना। २ (सम्म सपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना। ३ (वेयमाराहइ वयमाराहयइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एव श्रुतज्ञान की आराधना करना। ४ (न य भवइ अत्तसपग्गहिए) अभिमान न करना एव आत्म-प्रशसा न करना (चउत्थ) यह चौथा (पय) भेद (भवइ) है (य) और (इत्थ एत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है –

"पेहेइहियाणुसासण, सुस्सूसई त च पुणो अहिट्ठए ।
न य माणमएण मज्जई, विणयसमाहि आययट्ठिए" ॥२॥

अन्वयार्थ –(आययट्ठिए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासण) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करे (च) और (त) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधाय करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए-अहिट्ठिए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और (विणयसमाहि) विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे ॥२॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तजहा – १ सुय मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्व भवइ, २ एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्व भवइ, ३ अप्पाण ठावइस्सामि त्ति

(अक्खाय) फरमाया था वह (मे) मैंने (सुय) सुना है। यथा-(इह खलु) जैन सिद्धान्त मे (थेरेहिं) स्थविर (भगवतेहिं) भगवन्तो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। शिष्य प्रश्न करता है कि हे पूज्य! (थेरेहिं भगवतेहिं) उन स्थविर भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (ते) वे चत्तारि चार भेद (कयरे) कौन से (पन्नत्ता) बतलाये हैं? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि-हे आयुष्मन् शिष्य! (थेरेहिं) उन स्थविर (भगवतेहिं) भगवतो ने (विणयसमाहिट्ठाणा) विनय समाधि स्थान के (इमे खलु) ये (चत्तारि) चार भेद (पन्नत्ता) बतलाये हैं। (तजहा) जैसे कि - (विणयसमाही) विनय समाधि, (सुयसमाही) श्रुतसमाधि, (तवसमाही) तपसमाधि और (आयारसमाही) आचारसमाधि।

विणए सुए य तवे, आयारे निच्च पंडिया।
अभिरामयंति अप्पाण, जे भवंति जिइंदिया ॥१॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (जिइंदिया) जितेन्द्रिय साधु (विणए) विनय में (सुए) श्रुत में (तवे) तप मे (य) और (आयारे) आचार मे (निच्चं) सदा (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (अभिरामयंति) लगाये रहते हैं (पंडिया) वे ही सच्चे पण्डित (भवंति) कहलाते हैं ॥१॥

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ तजहा १ अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ २ सम्मं संपडिवज्जइ ३ वेयमाराहइ ४ न य भवइ अत्तसंपग्गहिए चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ — (विणयसमाही खलु) विनयसमाधि (चउव्विहा) चार प्रकार की (भवइ) होती है (तजहा) जैसे कि – १ (अणुसासिज्जतो) जिस गुरु से विद्या सीखी हो, उस गुरु को परमोपकारी जानकर (सुस्सूसइ) सदा सेवा शुश्रूषा करना एव उनकी आज्ञा को सुनने की इच्छा रखना। २ (सम्म सपडिवज्जइ) गुरु की आज्ञा को सुनकर उसके अभिप्राय को अच्छी तरह समझना। ३ (वेयमाराहइ वयमाराहयइ) इसके बाद गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करना एव श्रुतज्ञान को आराधना करना। ४ (न य भवइ अत्तसपग्गहिए) अभिमान न करना एव आत्म-प्रशसा न करना (चउत्थ) यह चौथा (पय) भेद (भवइ) है (य) और (इत्य एत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है।, वह इस प्रकार है –

"पेहेइहियाणुसासण, सुस्सूसई त च पुणो अहिट्ठए।
न य माणमएण मज्जई, विणयसमाहि आययट्ठिए" ॥२॥'

अन्वयार्थ –(आययट्ठिए) अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वाला साधु (हियाणुसासण) हितकारी शिक्षा सुनने की सदा (पेहेइ) इच्छा करे (च) और (त) गुरु की आज्ञा को (सुस्सूसई) शिरोधार्य करे (पुणो) और फिर (अहिट्ठए-अहिट्ठिए) उसी के अनुसार आचरण करे (य) और (विणयसमाहि) विनयी होने का (न माणमएण मज्जई) अभिमान न करे ॥२॥

चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ, तजहा – १ सुय मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्व भवइ, २ एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्व भवइ, ३ अप्पाण ठावइस्सामि त्ति

अज्झाइयव्व भवइ, ४ ठिओ पर ठावइस्सामित्ति। अज्झा इयव्व भवइ चउत्थ पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ —(सुयसमाही) श्रुतसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं, (तजहा) वे इस प्रकार हैं १ (मे) अध्ययन करने से मुझे (सुय) श्रुतज्ञान का (भविस्सइत्ति) लाभ होगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्व अज्झाइयव्वय भवइ) अध्ययन करे। २ अध्ययन करने से (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता (भविस्सामि त्ति) होगी ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ३ (अप्पाण) मैं अपनी आत्मा को (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर करूंगा ऐसा समझ कर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे। ४ (ठिओ) यदि मैं अपने धर्म मे स्थिर होऊगा तो (पर) दूसरो को भी (ठावइस्सामि त्ति) धर्म मे स्थिर कर सकूंगा ऐसा समझकर मुनि (अज्झाइयव्व भवइ) अध्ययन करे (चउत्थ) यह अन्तिम चौथा (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय मे (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है। वह इस प्रकार है —

"नाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ य ठावई पर।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए" ॥३॥

अन्वयार्थ— (सुयाणि) शास्त्रो का (अहिज्जित्ता) अध्ययन करने से (नाण) ज्ञान की प्राप्ति होती है (एगग्गचित्तो) चित्त की एकाग्रता होती है (ठिओ य) अपनी आत्मा को धर्म मे स्थिर करता है (य) और (पर) दूसरों को भी (ठावई) धर्म मे स्थिर करता है इसलिए मुनि को सदा (सुयसमाहिए) श्रुतसमाधि मे (रओ) सलग्न रहना

चाहिए ॥३॥

चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ, तजहा - १ नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, २ नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ३ नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, ४ नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो ।

अन्वयार्थ --(तवसमाहि) तपसमाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) है, (तजहा) वे इस प्रकार हैं — १ (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो के लिए एव किसी लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। २ (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखो के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ३ (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिए भी (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ४ (अन्नत्थनिज्जरट्ठयाए) कर्म निर्जरा के अतिरिक्त और किसी भी कार्य के लिए (तव) तपस्या (नो अहिट्ठिज्जा) न करे (चउत्थं) यह अन्तिम चतुर्थ (पय) पद (भवइ) है। (य) और (इत्थ) इस विषय में (सिलोगो) एक श्लोक भी है। वह इस प्रकार है —

"विविहगुणतवोरए निच्च, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए। तवसा, धुणइ पुराणपावग, जुत्तो सया तवसमाहिए" ॥४॥

अन्वयार्थ — मोक्षाभिलाषी मुनि को चाहिये कि वह (सया) सदा (तवसमाहिए) तपसमाधि मे (जुत्तो) सलग्न रहे तथा (निच्च) निरतर (विविहगुणतवोरए) विविध गुणयुक्त तप मे रत रहता हुआ वह मुनि (निरासए) इह-

लौकिक और पारलौकिक सुखो के लिए आशा न रक्खे किन्तु (निज्जरट्ठिए) केवल कर्मनिजरा के लिए तप करे (तवसा) इस प्रकार के तप से वह (पुराणपावग) पूर्वसंचित पाप कर्मों को (धुणइ) नष्ट कर डालता है ॥४।

चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ, तजहा — १ नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, २ नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा ३ नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयार महिट्ठिज्जा, ४ नन्नत्थ आरहन्तेहिं हेउहिं आयारमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पय भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो।

अन्वयार्थ — (आयारसमाही) आचार समाधि के (चउव्विहा) चार भेद (खलु भवइ) हैं (तजहा) वे इस प्रकार हैं — १ (इहलोगट्ठयाए) इहलौकिक सुखो की प्राप्ति के लिए एव लब्धि आदि की प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। २ (परलोगट्ठयाए) पारलौकिक सुखों को प्राप्ति के लिए (आयार) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ३ (कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक श्लाघा के लिए भी (आयारं) आचार का पालन (नो अहिट्ठिज्जा) न करे। ४ (आरहन्तेहिं हेऊहिं अन्नत्थ) जैन सिद्धान्त मे कहे हुए कारणो के अतिरिक्त किसी के लिए भी (आयार) आचार का पालन (न अहिट्ठिज्जा) न करे किन्तु आते हुए आश्रवों के निरोध के लिए आचार का पालन करे क्योंकि किसी प्रकार की आशा न रखकर आचार का पालन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है- (चउत्थ) यह अन्तिम चतुर्थ (पय) पद (भवइ) है (य) और (इत्थ) इस विषय

का (सिलोगो) एक श्लोक भी (भवइ) है वह इस प्रकार है —

जिणवयणरए अतितिणे, पडिपुन्नाययमाययट्ठिए।
आयारसमाहिसवुडे, भवइ य दते भावसधए ॥५॥

अन्वयार्थ — (जिणवयणरए) जिन वचनो पर अटल श्रद्धा रखने वाला (अतितिणे) कठोर वचन न वोलने वाला (पडिपुन्न) शास्त्रो के तत्त्वो को भली-भाँति जानने वाला (आयय-आयइ) निरन्तर (आययट्ठिए) मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला (दते) इन्द्रियो का दमन करने वाला (य) और (आयारसमाहिसवुडे) आचारसमाधि द्वारा आश्रवो का निरोध करने वाला मुनि (भावसधए भवइ) शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥५॥

अभिगम चउरो समाहिओ, सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ।
विउलहिय सुहावह पुणो, कुव्वइ य सो पयखेममप्पणो ॥६॥

अन्वयार्थ —(सुविसुद्धो) निर्मल चित्त वाला (सुसमाहिअप्पओ) अपनी आत्मा को सयम मे स्थिर रखने वाला (सो) मुनि (चउरो) चारो प्रकार की (समाहिओ) समाधियो के स्वरूप को (अभिगम) जानकर (अप्पणो) अपनी आत्मा के लिए (विउलहिय) पूर्ण हितकारी (य) और (सुहावह) सुखकारी (पुणो) एव (खेम) कल्याणकारी (पय) निर्वाण पद को (कुव्वइ) प्राप्त करता है ।६॥

जाइमरणाओ मुच्चइ, इत्थ थ च चएइ सव्वसो।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए ॥७॥
त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ— उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला मुनि (इत्थ थ-इत्थत्थं) नरकादि पर्यायो का (सव्वसो) सर्वथा (चएइ) त्याग कर देता है अर्थात् नरकादि गतिया मे नही जाता (य) किन्तु वह (जाइमरणाओ) जन्म मरण के चक्कर से (मुच्चइ) छूट जाता है (वा) तथा (सासए) शाश्वत (सिद्धे) सिद्ध (हवइ) हो जाता है (वा) अथवा (अप्परए) यदि कुछ कम शेष रह जाते हैं तो अल्प काम-विकार वाला उत्तम कोटि का (महिड्ढिए) महान् ऋद्धि-(देवे) अनुत्तर विमानवासी देव होता है ॥७॥ (त्ति बेमि) पूववत् ।

"सभिक्खु" नामक दसवाँ अध्ययन

निक्खम्ममाणाइ य बुद्धवयणे,
निच्च चित्तसमाहिओ हविज्जा ।
इत्थीण वस न यावि गच्छे,
वत नो पडिआयइ जे स भिक्खू ॥१॥

अन्वयार्थ— (जे) जो (आणाइ) महापुरुषो के उपदेश से (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (बुद्धवयणे) जिन वचनो मे (निच्च) सदा (चित्तसमाहिओ) स्थिर चित्त वाला (हविज्जा) होता है (यावि) और (इत्थीण) स्त्रियो के (वस न गच्छे) वशीभूत नही होता तथा (वत) वमन किये हुए-छोडे हुए भोगो को (नो पडिआयइ) फिर स्वीकार करने की इच्छा नही करता (स) वह (भिक्खू) शास्त्रोक्त विधि से तप द्वारा पूर्व सचित कर्मों को भेदन करने वाला भिक्षु कहलाता है ॥१॥

पुढवि न खणे न खणावए,
सीओदग न पिए न पियावए ।
अगणि-सत्थं जहा सुनिसिय,
त न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥२॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (पुढवि) सचित्त पृथ्वी को (न खणे) स्वय नही खोदता (न खणावए) दूसरो से नही खुदवाता और खोदने वालो की अनुमोदना भी नही करता ।

जो (सीग्रोदगं) सचित्त जल को (न पिए) स्वय नही पीता (न पियावए) दूसरो को नही पिलाता-और पीने वालो की अनुमोदना भी नही करता (सत्य जहा सुनिसियं) खड्गादि तीक्ष्ण शस्त्र के समान (तं ग्रगणि) ग्रग्नि को (न जले) स्वय नही जलाता (न जलावए) दूसरो से नही जलवाता और जलाने वालो की अनुमोदना भी नही करता, अर्थात् जो पृथ्वीकाय, ग्रप्पकाय, तेउकाय, की तीन करण तीन योग से हिंसा नहीं करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥२॥

ग्रनिलेण न वीए न वीयावए,
हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।
वीयाणि सया विवज्जयंतो,
सच्चित्त नाहारए जे स भिक्खू ॥३॥

ग्रन्वयार्थ — (जे) जो (ग्रनिलेण) पखे आदि से (न वीए) स्वय हवा नही करता (न वीयावए) दूसरों से हवा नहीं करवाता और हवा करने वालो की अनुमोदना भी नही करता (हरियाणि) तरु, लता ग्रादि वनस्पतिकाय का (न छिंदे) छेदन नही करता (न छिंदावए) दूसरों से छेदन नही करवाता और छेदन करने वालो की अनुमोदना भी नही करता और यदि (वीयाणि) मार्ग मे सचित्त बीच ग्रादि पड़े हो तो उन्हे (विवज्जयंतो) वर्जकर बचाकर चलता है और जो (सया) कभी भी (सच्चित्त) सचित्त वस्तु का (नाहारए) ग्राहार नही करता एवं न दूसरो को कराता है और सचित्त वस्तु का ग्राहार करने वालों की अनुमोदना भी नहीं करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥३॥

वहण तसथावराण होइ, पुढवीतणकट्ठ निस्सियाण ।
तम्हा उद्देसिय न भुंजे नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू ।४।

अन्वयार्थ. - (जे) जो (उद्देसिय) ×औद्देशिक (न भुंजे) नही भोगता (न पए) जो स्वय अन्नादि को नहीं पकाता (ना वि पयावए) न दूसरो से पकवाता है और पकाने वालो को अनुमोदना भी नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है (तम्हा) क्योंकि भोजन पकाने से (पुढवीतण कट्ठनिस्सियाण) पृथ्वी, तृण और काष्ठ के आश्रय में रहे हुए (तसथावराण ण) त्रस और स्थावर जीवो की (वहण) हिंसा (होइ) होती है-इसलिए भिक्षु ऐसी प्रवृत्ति नही करता ।४।

रोइअ नायपुत्तवयणे, अत्तसमे मन्निज्ज छप्पि काए ।
पच य फासे महव्वयाइ, पचासवसवरे जे स भिक्खू ॥५॥

अन्वयार्थ (जे) जो (नायपुत्तवयणे) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनो को (रोइअ) श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके (छप्पिकाए) छ जीव निकाय को (अत्तसमे) अपनी आत्मा के समान (मन्निज्ज) मानता है (पच) पाच (महव्वयाइ) महाव्रतों की (फासे) सम्यक् आराधना करता है (य) और (पचासवसवरे) पाच आश्रवो का निरोध करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।५॥

चत्तारि वमे सया कसाए,
धुवजोगी हविज्ज बुद्धवयणे ।
अहणे निज्जायरूवरयए,
गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू ॥६॥

× किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहारादि यदि वही साधु ले तो आधा कर्म और यदि दूसरा साधु ले तो औद्देशिक।

अन्वयार्थ — (जे) जो (चत्तारि) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों (कसाए) कषायों को (वमे) त्यागता है (बुद्धवयणे) तीर्थंकर देवों के प्रवचनों मे (सया) सदा (धुव जोगी) ध्रुवयोगी-अटल श्रद्धा रखने वाला (हविज्ज) होता है (अहणे निज्जायरूवरयए) जिसने गाय, भैंस आदि चतुष्पदादि धन तथा सोना-चादी आदि सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर दिया है और (गिहिजोगं) जो गृहस्थों के साथ अति परिचय (परिवज्जए) नही रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।६।।

सम्मद्दिट्ठीसया अमूढे, अत्थि हु नाणे तवे संजमे य ।
तवसा धुणइ पुराणपावगं मणवयकायसुसंवुडे जे स भिक्खू ।।७।।

अन्वयार्थ — (जे) जो (सम्मद्दिट्ठी) सम्यग् दृष्टि है (य) और (नाणे तवे संजमे) ज्ञान, तप, संयम के विषय में जो (सया) सदा (हु) पूर्ण (अमूढे) श्रद्धा एव दृढ विश्वास (अत्थि) रखता है (मण वय काय सुसंवुडे) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से युक्त है और जो (तवसा) तपस्या द्वारा (पुराणपावग) पूर्वोपार्जित पापकर्मों को (धुणइ) नष्ट करता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।।७।।

तहेव असणं पाणगं वा,
विविहं खाइमं साइमं लभित्ता ।
होही अट्ठो सुए परे वा,
तं न निहे न निहावए जे स भिक्खू ।।८।।

अन्वयार्थ —(तहेव) इसी प्रकार (ज) जो (विविहं) अनेक प्रकार के (असणं) अशन (पाणगं) पानी (साइमं)

खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थों को (लभित्ता) प्राप्त करके (सुए) कल (वा) अथवा (परे) परसो या और कभी (अट्ठो होही) यह पदार्थ काम आयेगा ऐसा विचार कर जो (तं) उसको (न निहे) संग्रह कर वासी नही रखता (न निहावए) दूसरो से वासी नही रखवाता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥८॥

तहेव असण पाणग वा,
विविह खाइम साइम लभित्ता ।
छंदिय साहम्मियाण भुंजे,
भुच्चा सज्झायरए जे स भिक्खू ॥९॥

अन्वयार्थ —(तहेव) इसी प्रकार (जे) जो (विविह) अनेक प्रकार के (असण) अशन (पाणग) पानी (खाइम) खादिम (वा) और (साइम) स्वादिम आदि पदार्थों को (लभित्ता) प्राप्त करके फिर (साहम्मियाण) अपने स्वधर्मी साधुओ को (छंदिय) बुलाकर (भुंजे) भोजन करता है और (भुच्चा) भोजन करने के बाद (सज्झायरए) स्वाध्यायादि मे रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥९॥

न य वुग्गहियं कहं कहिज्जा,
न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते ।
संजमे धुव जोगेण जुत्तो,
उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू ॥१०॥

अन्वयार्थ - (जे) जो (वुग्गहिय) कलह उत्पन्न करने वाली (कह) कथा (न य कहिज्जा) नही कहता (न य कुप्पे) किसी पर क्रोध नहीं करता (निहुइंदिए) इन्द्रियो को

सदा वश मे रखता है (वसते) मन को शान्त रखता है (मजमे धुव जोगेण जुत्ते सजमधुवजोगजुत्ते) जो सयम मे सदा तल्लीन रहता है (उवसते) कष्ट पडने पर भी जो आकुल व्याकुल नहीं होता (अविहेडए) और कालोकाल करने योग्य पडिलेहणादि कार्यो में जो उपेक्षा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१०॥

जो सहइ उ गामकंटए, अक्कोसपहारतज्जणाओ य ।
भयभेरवसद्दसप्पहासे, समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥११॥

अन्वयार्थ —(जो) जो (गामकटए) श्रोत्रादि इन्द्रियों को काटे के समान दुःख उत्पन्न करने वाले (अक्कोसपहारतज्जणाओ) कठोर वचन, प्रहार और ताडना तर्जनादि को (उ हु) समभावपूवक (सहइ) सहन कर लेता है (य) और (भयभेरवसद्दसप्पहासे) जहाँ अत्यन्त भय को उत्पन्न करने वाले भूत वेताल आदि के भयकर शब्द होते हों, ऐसे स्थानों मे भी (जे) जो निर्भय होकर ध्यानादि में निश्चल बना रहता है (य) और (समसुहदुक्खसहे) जो सुख दुःख को समान समझ कर समभाव रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥११॥

पडिम पडिवज्जिया मसाणे,
नो भीयए भयभेरवाइ दिस्स ।
विविहगुणतवोरए य निच्च,
न सरीर चाभिकखए जे स भिक्खू ॥१२॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (निच्च) सदा (विविहगुणतवोरए) नाना प्रकार के मूल गुण उत्तर गुणों में रत रहता

है (य) और (मसाणे) और श्मशान भूमि मे (पडिम) मासिकी आदि भिक्षु पडिमा को (पडिवज्जिया) स्वीकार करके ध्यान मे खडा हुआ जो मुनि (भयभेरवाइ) भूत वेताल आदि के भयकर रूपो को (दिस्स) देखकर एव, भयकर शब्दो को सुनकर भी (नो भीयए) नहीं डरता है (च) तथा (सरीर) जो शरीर पर भी (न अभिकखए) ममत्व भाव नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१२॥

असइ वोसट्ठचत्तदेहे,
अक्कुट्ठे व हए लूसिए वा ।
पुढविसमे मुणी हविज्जा,
अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू ॥१३॥

अन्वयार्थ— (जे) जो (मुणी) मुनि (असइ) कभी भी (वोसट्ठचत्तदेहे) शरीर की विभूषा नही करता एव शरीर पर ममत्व भी नही रखता (अक्कुट्ठे) कठोर वचनो द्वारा आक्षेप किया जाने पर (व) अथवा (हए) लकडी आदि से पीटे जाने पर (वा) अथवा (लूसिए) शस्त्रादि से छेदन-भेदन किये जाने पर भी जो (पुढविसमे हविज्जा) पृथ्वी के समान समभावपूर्वक सहन कर लेता है (अनियाणे) जो किसी तरह का नियाणा नही करता तथा (अकोउहल्ले) नाच, गान आदि मे रुचि नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१३॥

अभिभूय काएण परीसहाइ
समुद्धरे जाइपहाउ अप्पय ।
विइत्तु जाईमरण महब्भय,
तवे रए सामणिए जे स भिक्खू ॥१४॥

सदा वश मे रखता है (पसते) मन को शान्त रखता है (मजमे घुव जोणेण जुत्ते सजमघुवजोगजुत्ते) जो सयम मे सदा तल्लीन रहता है (उवसते) कष्ट पडने पर भी जो आकुल-व्याकुल नही होता (अविहेडए) और कालोकाल करने योग्य पडिलेहणादि कार्यो मे जो उपेक्षा नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१०॥

जो महइ उ गामकंटए, अक्कोसपहारतज्जणाओ य ।
भयभेरवसद्दसप्पहासे, समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू ॥११॥

अन्वयार्थ —(जो) जो (गामकटए) श्रोत्रादि इन्द्रियों को कांटे के समान दुख उत्पन्न करने वाले (अक्कोसपहार-तज्जणाओ) कठोर वचन प्रहार और ताडना-तर्जनादि को (उ हु) समभावपूर्वक (सहइ) सहन कर लेता है (य) और (भयभेरवसद्दसप्पहासे) जहाँ अत्यन्त भय को उत्पन्न करने वाले भूत वेताल आदि के भयकर शब्द होते हों, ऐसे स्थानो मे भी (जे) जो निर्भय होकर ध्यानादि मे निश्चल बना रहता है (य) और (समसुहदुक्खसहे) जो सुख दुख को समान समझ कर समभाव रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥११॥

पडिम पडिवज्जिया मसाणे,
नो भीयए भयभेरवाइ दिस्स ।
विविहगुणतवोरए य निच्च,
न सरीरंचाभिकंखए जे स भिक्खू ॥१२॥

अन्वयार्थ — (*जे*) जो (*निच्च*) सदा (*विविहगुण-*तवोरए) नाना प्रकार के मूल गुण उत्तर गुणों में रत रहता

है (य) और (मसाणे) और श्मशान भूमि मे (पडिम) मासिकी आदि भिक्षु पडिमा को (पडिवज्जिया) स्वीकार करके ध्यान मे खडा हुआ जो मुनि (भयभेरवाइ) भूत वेताल आदि के भयकर रूपो को (दिस्स) देखकर एव, भयकर शब्दो को सुनकर भी (नो भीयए) नही डरता है (च) तथा (सरीर) जो शरीर पर भी (न अभिकखए) ममत्व भाव नही रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१२॥

असइ वोसट्ठचत्तदेहे,
अक्कुट्ठे व हए लूसिए वा ।
पुढविसमे मुणी हविज्जा,
अनियाणे अकोउहल्ले जे स भिक्खू ॥१३॥

अन्वयार्थ— (जे) जो (मुणी) मुनि (असइ) कभी भी (वोसट्ठचत्तदेहे) शरीर की विभूषा नही करता एव शरीर पर ममत्व भी नही रखता (अक्कुट्ठे) कठोर वचनो द्वारा आक्षेप किया जाने पर (व) अथवा (हए) लकडी आदि से पीटे जाने पर (वा) अथवा (लूसिए) शस्त्रादि से छेदन-भेदन किये जाने पर भी जो (पुढविसमे हविज्जा) पृथ्वी के समान समभावपूर्वक सहन कर लेता है (अनियाणे) जो किसी तरह का नियाणा नही करता तथा (अकोउहल्ले) नाच, गान आदि मे रुचि नहीं रखता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१३॥

अभिभूय काएण परीसहाइ,
समुद्धरे जाइपहाउ अप्पय ।
विइत्तु जाईमरण महब्भय,
तवे रए सामणिए जे स भिक्खू ॥१४॥

अन्वयार्थ —(जे) जो (काएण) शरीर से (परीष-हाइ) परीषहों को (अभिभूय) जीतकर (जाइपहाउ) संसार समुद्र से (अप्पयं) अपनी आत्मा का (समुद्धरे) उद्धार कर लेता है तथा (जाईमरणं) जन्म मरण को (महब्भयं) महा भयंकारी एवं अनन्त दुखों का कारण (विइत्तु) जानकर (सामणिए) संयम और (तवे) तप में (रए) रत रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥१४॥

हत्थसंजए पायसंजए
वायसंजए संजइंदिए ।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा,
सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (हत्थसंजए) हाथों में संयत है (पायसंजए) पैरों में संयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवों को कछुए की तरह संकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक कार्य करता है (वाय-संजए) जो वचन से संयत है अर्थात् किसी को सावद्य एवं परपीडाकारी वचन नहीं कहता तथा (संजइंदिए) जो सब इन्द्रियों को वश में रखता है (अज्झप्परए) अध्यात्म रस में एवं धर्मध्यान, शुक्लध्यान में रत रहता है (सुसमाहि अप्पा) जो संयम में अपनी आत्मा को समाधियुत रखता है (च) और (सुत्तत्थं) जो सूत्र और अर्थ को यथार्थ रूप से (वियाणइ) जानता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कह-लाता है ॥१५॥

कयविक्कयसंनिहिओ विरए,
सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू ॥१६॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (उवहिम्मि) वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि धर्मोपकरणो मे (अमुच्छिए) मूर्च्छाभाव नही रखता (अगिद्धे) जो किसी भी पदार्थ में गृद्धिभाव नही रखता एव सासारिक प्रतिबन्धो से अलग रहता है (अन्नायउंछ) भिक्षा एव उपकरणादि भी अज्ञात घरो से मागकर लाता है (पुलनिप्पुलाए) सयम को दूषित करने वाले दोषो का कदापि सेवन नहीं करता (कयविक्कयसंनिहिओ विरए) खरीदना, बेचना, सग्रह करना आदि व्यापारिक कार्यो से जो सदा विरक्त रहता है (य) और (सव्वसंगावगए) जो सब सग एव आसक्तियो को छोड देता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ॥ १६॥

अलोल भिक्खू न रसेसु गिज्झे,
उंछ चरे जीविय नाभिकंखे।
इड्ढि च सक्कारण पूयण च,
चए ठिअप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥१७।

अन्वयार्थ – (जे) जो (भिक्खू) साधु (अलोल-अलोलु) लोलुपता से रहित होकर (रसेसु) किसी भी प्रकार के रसो मे (न गिज्झे) आसक्त नही होता (उंछ) अज्ञात घरों मे (चरे) गोचरी करता है अर्थात् अनेक घरों से थोडा-थोडा आहार लेकर अपनी सयम यात्रा का निर्वाह करता है (जीविय नाभिकंखे-कंखी) मरणान्त कष्ट पडने पर भी जो असयम जीवन की इच्छा नही करता (च) और जो (इड्ढि) ऋद्धि (सक्कारणपूयण च) सत्कार और पूजा-

प्रतिष्ठा को (चए) नही चाहता और (अणिहे) जो माया-कपट रहित होकर (ठिअप्पा) अपनी आत्मा को सयम में स्थिर रखता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।१७।

न पर वइज्जासि अय कुसीले,
जेण च कुप्पिज्ज न त वइज्जा ।
जाणिय पत्तेय पुण्ण पाव,
अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू ॥१८॥

अन्वयार्थ —(जे) जो (पर) किसी भी दूसरे व्यक्ति को (अय) यह (कुसीले) दुराचारी है ऐसा (न वइज्जासि) वचन नही बोलता (च) और (जेण-जेण) ऐसे वचन जिन्हें सुनकर (कुप्पिज्ज) दूसरो को क्रोध उत्पन्न हो (त) वैसे वचन (न वइज्जा) कभी नही बोलता (पत्तेयं) प्रत्येक जीव (पुण्णपाव) अपने अपने पुण्य–पाप-शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दु ख भोगते हैं (जाणिय) ऐसा जानकर जो अपने ही दोषों को दूर करता है तथा (अत्ताणं) अपने आपको (न समुक्कसे) सब से बढ़कर एव उत्कृष्ट मानकर जो अभिमान नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कह-लाता है ॥१८॥

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते,
न लाभमत्ते न सुएण मत्ते ।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता,
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू ॥१६॥

अन्वयार्थ — (जे) जो (न जाइमत्ते) जाति का मद नही करता (न रूवमत्ते) रूप का मद नहीं करता (न

लाभमत्ते) लाभ का मद नही करता (य) और (न सुणए मत्ते) श्रुत-ज्ञान का मद नही करता (सव्वाणि) इस प्रकार सब (मयाणि) मदो को (विवज्जइत्ता) छोडकर (धम्मज्झाणरए) धर्मध्यान मे सदा लीन रहता है (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।१९।।

पवेयए अज्जपय महामुणी,
धम्मे ठिओ ठावयई पर पि ।
निक्खम्म वज्जिज्ज कुसीललिंग,
न यावि हास कुहए जे स भिक्खू ।।२०।।

अन्वयार्थ—(जे) जो (महामुणी) महामुनि (अज्जपय) परोपकार की दृष्टि से शुद्ध एव सच्चे धर्म का (पवेयए) उपदेश देता है (धम्मे) जो स्वय अपनी आत्मा को सद्धर्म मे (ठिओ) स्थिर करके (पर पि) दूसरो को भी (ठावयई) धर्म मे स्थिर करता है (निक्खम्म) दीक्षा लेकर (कुसीललिंग) आरम्भ समारम्भ रूप गृहस्थ की क्रिया को एव कुसाधुओ के सग को जो (वज्जिज्ज) छोड देता है (यावि) और (न हास कुहए) हास्य को उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाए एव ठट्ठा मसकरी आदि नही करता (स) वह (भिक्खू) भिक्षु कहलाता है ।।२०।।

त देहवास असुइ असासय,
सया चए निच्चहियट्ठिअप्पा ।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बधण,
उवेइ भिक्खू अपुणागम गइ ।।२१।। त्ति बेमि ।।

अन्वयार्थ — (निच्चहियट्ठि अप्पा) मोक्ष रूपी हित एव कल्याण मार्ग मे सदा अपनी आत्मा को स्थिर रखने

वाला (भिक्खू) साधु (त) इस (असुइ) अपवित्र और (असासय) अशाश्वत (देहवास) शरीर का (सया) सदा के लिए (चएं) छोडकर तथा (जाई मरणसे) जन्म-मरण के (बधणं) बन्धन को (छिंदित्तु) काट कर (अपुणागमं) पुनरागमन रहित अर्थात् जहाँ जाकर फिर संसार में लौटना न पडे ऐसी (गइ) सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ (त्ति बेमि) श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि-हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर से जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहा है मैंने अपनी बुद्धि से कुछ नही जोडा है ॥

रतिवाक्य नामक प्रथम चूलिका

इह खलु भो ! पव्वइएण उत्पन्न दुक्खेण सजमे अरइसमावन्न चित्तेण ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएण चेव हयरस्सिगयकुसपोयपडागाभूयाइ इमाइ अट्ठारस ठाणाइ सम्म सपडिलेहियव्वाइ भवति ।

अन्वयार्थ — गुरु महाराज कहते हैं कि (भो) हे शिष्यो ! (पव्वइएण) दीक्षा लेने के बाद (उत्पन्न-दुक्खेणं) किसी समय शारीरिक एव मानसिक कष्ट आ पडने पर यदि कदाचित् (सजमे) सयम मे (अरइसमावन्न चित्तेण) अरति उत्पन्न हो जाय अर्थात् सयम मार्ग मे चित्त का प्रेम न रहे और (ओहाणुप्पेहिणा) सयम छोडकर वापिस गृहस्थाश्रम मे चले जाने की इच्छा हाती हो तो (अणो-हाइएण चेव) सयम छोडने के पहले साधु को (इह खलु इमाइ) इन (अट्ठारस ठाणाइ) अठारह स्थानो का (सम्म)

खूब अच्छी तरह से (सपडिलेहियव्वाइ भवति) विचार करना चाहिये क्योंकि (हयरस्सि गयकुस पोयपडागाभूयाइ) जिस प्रकार लगाम से चचल घोडा वश में आ जाता है, अकुश से मदोन्मत्त हाथी वश मे आ जाता है, मार्ग भूलकर समुद्र मे इधर-उधर गोते खाती हुई नाव पतवार द्वारा ठीक रास्ते पर आ जाती है, उसी प्रकार आगे कहे जाने वाले अठारह स्थानो पर विचार करने से चचल एव डावाँडोल बना हुआ साधु का चित्त भी सयम मे पुन स्थिर हो जाता है ॥

तजहा-ह भो ! १ दुस्समाए दुप्पजीवी, २ लहुसगा इत्तरिया गिहीण कामभोगा, ३ भुज्जो य साइबहुला मणुस्सा, ४ इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सई, ५ ओम जणपुरक्कारे, ६ वतस्स य पडिग्रायण, ७ अहरगइवासोवसपया, ८ दुल्लहे खलु भो ! गिहीण धम्मे गिहवासमज्झे वसताण, ६ आयके से वहाय होइ, १० सकप्पे से वहाय होइ, ११ सोवक्केसे गिहिवासे निरुवक्केसे परियाए १२ बधे गिहिवासे मुक्खे परियाए, १३ सावज्जे गिहिवासे अणवज्जे परियाए, १४ बहुसाहारणा गिहीण कामभोगा, १५ पत्तेय पुण्णपाव, १६ अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्ग जल बिंदु चचले, १७ बहु च खलु भो ! पाव कम्म पगड १८ पावाण च खलु भो ! कडाण कम्माण पुव्वि दुच्चिन्नाण दुप्पडिकताण वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता । अट्ठारसम पय भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो ।

अन्वयार्थ — (तजहा) वे अठारह स्थान इस प्रकार हैं —१ (हभो) अपनी आत्मा को सबोधित कर इस प्रकार

विचार करना चाहिए कि हे आत्मन् (दुस्समाए) इस दुःषम काल का जीवन ही (दुप्पजीवी) दुःखमय है। २ इस दुःषम काल के अन्दर (गिहीण) गृहस्थ लोगों के (कामभोगा) कामभोग (लहुसगा) तुच्छ और (इत्तरिया) अल्पकालीन हैं। ३ (भुज्जो य और (मणुस्सा) इस दुःषम काल में बहुत से मनुष्य (साइबहुला सायबहुला) बड़े कपटी एवं मायावी होते हैं। ४ (मे) मुझे (दुक्खे) जो दुःख उत्पन्न हुआ है (इमेय) वह (न चिरकालोवट्ठाई) बहुत काल तक नही रहेगा। ५ (ओमजणपुरक्कारे) संयम छोड़कर गृहस्थाश्रम मे जाने वालों को नीच से नीच पुरुषों की खुशामद एवं सेवा करनी पड़ती है। ६ (य) और (वतस्स) संयम को छोड़कर गृहस्थाश्रम में जाने से जिन पदार्थों का एक बार वमन त्याग कर दिया है (पडिआयणं) उन्हीं का फिर सेवन करना पड़ेगा। ७ (अहरगइवासोवसंपया) संयम छोड़कर गृहस्थाश्रम मे जाना मानो साक्षात् नरक गति म जाने की तैयारी करने के समान है। ८ (भो) हे आत्मन्! (गिहवास मज्झे) गृहस्थाश्रम रूप पाश में (वसंताणं) जकड़े हुए (गिहीण) गृहस्थों के लिए (धम्मे) धर्म का पालन करना (खलु दुल्लहे-दुल्लभे) निश्चय ही कठिन है। ९ (सकप्पे) यह शरीर रोगों का घर है है इसमें अचानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं (से) वे रोग तत्काल (वहाय होइ) मृत्यु के मुख मे पहुचा देते हैं उस समय धर्म के सिवाय कोई भी इस जीव का सहायक नही होता। १० (संकप्प) इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोग से सदा मानसिक चिन्ता उत्पन्न होते रहते हैं (से) इससे उसका (वहाय) अहित (होइ) होता है और आर्त्तध्यान रौद्रध्यान बना रहता है।

११ (गिहवासे) गृहस्थाश्रम (सोवक्केसे) क्लेशयुक्त है और (परियाए) संजम (निरुवक्केसे) क्लेशरहित है क्योंकि सच्ची शांति त्याग में ही है। १२ (गिहवासे) गृहस्थावास (बंधे) बन्धन रूप है कर्मों के बन्धन का स्थान है और (परियाए) संयम (मुक्खे) मोक्षरूप है अर्थात् कर्मों से छुड़ाने वाला है क्योंकि त्याग में ही सच्ची मुक्ति है। १३ (गिहवासे) गृहस्थावास (सावज्जे) पाप स्थान है और (परियाए) संयम (अणवज्जे) निष्पाप एवं पवित्र है। १४ (गिहीण) गृहस्थों के (कामभोगा) कामभोग (बहुसाहारणा) तुच्छ एवं साधारण हैं। १५ (पत्तेयं) प्रत्येक प्राणी के (पुण्णपाव) पुण्य पाप अलग अलग हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार सुख-दुःख भोगते हैं। १६ (भो) हे आत्मन्! (मणुयाण) मनुष्यों का (जीविए) जीवन (कुसग्गजलबिंदु चंचले) कुश के अग्रभाग पर रहे हुए जलबिंदु के समान अति चंचल है (अणिच्चे खलु) एवं क्षणिक है। १७ (च) और (भो) हे आत्मन्! (खलु) निश्चय ही मैंने (बहु) बहुत (पाव कम्म) पाप कर्म (पगड) किये हैं अथवा मेरे बहुत ही प्रबल पापकर्मों का उदय है इसीलिए संयम छोड़ देने के निन्दनीय विचार मेरे हृदय में उत्पन्न हो रहे हैं। १८ (च) और (भो) हे आत्मन्! (दुच्चिन्नाण) दुष्ट भावों से (दुप्पडिकंताण) तथा मिथ्यात्व आदि से (कडाण) उपार्जन किये हुए (पुव्विं पावाण कम्माण) पहले के पाप कर्मों के फल को (वेइत्ता) भोगने के बाद ही मोक्ष होता है किन्तु (अवेइत्ता) कर्मों का फल भोगे बिना (नत्थि) मोक्ष नहीं होता (वा) अथवा (तवसा) तप द्वारा (झोसइत्ता) कर्मों का क्षय कर देने पर ही मोक्ष

होता है (अट्ठारसमं) यह अठारहवां (पय) पद (भवइ) है (अ) और (इत्थ) इन अठारह विषयों पर (सिलोगो) श्लोक भी (भवइ) हैं, वे इस प्रकार हैं :—

जया य चयई धम्मं, अणज्जो भोगकारणा ।
से तत्थ मुच्छिए बाले आयइं नावबुज्झइ ॥१॥

अन्वयार्थ — (जया य) जब (अणज्जो) कोई अनार्य पुरुष (भोगकारणा) भोगों की इच्छा से (धम्मं) संयम को (चयई) छोड़ता है तब (तत्थ) कामभोगों में (मुच्छिए) आसक्त बना हुआ (से) वह (बाले) अज्ञानी (आयइं) भविष्यत् काल के लिए (नावबुज्झइ) जरा भी विचार नहीं करता ॥१॥

जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छमं ।
सव्व धम्मपरिब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥२॥

अन्वयार्थ — (वा) जिस प्रकार स्वर्गलोक से च्युत (छमं) पृथ्वी पर (पडिओ) उत्पन्न होने वाला (इंदो) इन्द्र अपनी पूर्व ऋद्धि को याद कर पश्चात्ताप करता है उसी प्रकार (जया) जब कोई साधु (ओहाविओ) संयम से भ्रष्ट होकर (सव्वधम्मपरिब्भट्ठो) सब धर्मों से भ्रष्ट (होइ) हो जाता है तब (स) वह (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥२॥

जया य वंदिमो होइ, पच्छा होइ अवंदिमो ।
देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ ॥३॥

अन्वयार्थ — (जया) जब साधु संयम में रहता है तब तो (वंदिमो) वह सब लोगों का वन्दनीय (होइ)

होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद वही (अवदिमो) अवन्दनीय (होइ) हो जाता है (ठाणा चुया देवया व) जिस प्रकार इन्द्र द्वारा परित्यक्ता देवी पश्चाताप करती है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥३॥

जया य पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो ।
राया व रज्जपब्भट्ठो स पच्छा परितप्पइ ॥४॥

अन्वयार्थ — (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (पूइमो) सब लोगो से पूजनीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम छोड देने के बाद (अपूइमो) अपूजनीय (होइ) हो जाता है (रज्जपब्भट्ठो राया व) जिस प्रकार राज्यभ्रष्ट राजा पश्चाताप करता है उसी प्रकार (स) वह साधु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (परितप्पइ) पश्चाताप करता है ॥४॥

जया य माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो ।
सिट्ठिव्व कब्बडे छूढा, स पच्छा परितप्पइ ॥५॥

अन्वयार्थ — (जया) जब साधु सयम मे रहता है तब तो (माणिमो) सब लोगो का माननीय (होइ) होता है (य) किन्तु (पच्छा) सयम से भ्रष्ट हो जाने के बाद (अमाणिमो) अमाननीय (होइ) हो जाता है (कब्बडे) जिस प्रकार छोटे से गाव मे (छूढो) अनिच्छापूर्वक रखा हुआ (सिट्ठिव्व) सेठ पश्चाताप करता है उसी प्रकार (स) वह सयमभ्रष्ट साधु भी (पच्छा) पीछे (परितप्पइ) पश्चाताप करता है ॥५॥

जया य थेरओ होइ, समइक्कंत जुव्वणो ।
मच्छुव्व गल गिलित्ता, स पच्छा परितप्पइ ॥६॥

अन्वयार्थ — (मच्छुव्व) जिस प्रकार लोहे के कांटे पर लगे हुए मांस को खाने के लिए मछली उस पर झपटती है किन्तु (गल गिलित्ता) गले में कांटा फंस जाने के कारण पश्चात्ताप करती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है इसी प्रकार (पच्छा) संयम से भ्रष्ट हुआ साधु (समइक्कंत जुवणो) यौवन अवस्था के बीत जाने पर (जयाय) जब (थेरओ) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है तब (स) वह (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥६॥

भावार्थ — जिस प्रकार मछली न तो उस लोहे के कांटे को गले से नीचे उतार सकती है और न गले से बाहिर निकाल सकती है उसी प्रकार वह संयमभ्रष्ट वृद्ध साधु न तो भोगों को भोग सकता है और न उन्हें छोड़ सकता है। यों ही कष्टमय जीवन समाप्त कर मृत्यु के मुख में पहुंच जाता है ॥

जया य कुकुडुंबस्स, कुतत्तीहिं विहम्मइ ।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पइ ॥७॥

अन्वयार्थ — विषय भोगों के झूठे लालच में फंस कर संयम से पतित होने वाले साधु को (जयाय) जब (कुकुडुंबस्स) प्रतिकूल परिवार एवं इष्ट संयोगों की प्राप्ति नहीं होती तब (कुतत्तीहिं) वह आर्त्तरौद्रध्यान करता हुआ अनेक प्रकार की चिन्ताओं से (विहम्मइ) चिन्तित रहता है और (बंधणे) बन्धन में (बद्धो) बंधे हुए (हत्थी व) हाथी के समान (स) वह (पच्छा) पीछे बार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥७॥

पुत्तदारपरीकिण्णो, मोहसंताणसंतओ ।
पंकोसन्नो जहा नागो, स पच्छा परितप्पइ ॥८॥

अन्वयार्थ — (पुत्तदारपरीकिण्णो) पुत्र-स्त्री आदि से घिरा हुआ और (मोहसंताण संतओ) मोहपाश में फंसा हुआ (स) वह संयम भ्रष्टसाधु (पंकोसन्नो) कीचड़ में फंसे हुए (जहा नागो) हाथी के समान (पच्छा) पीछे वार-बार (परितप्पइ) पश्चात्ताप करता है ॥८॥

अज्ज अहं गणी हुंतो, भाविअप्पा बहुस्सुओ ।
जइऽहं रमंतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए ॥९॥

अन्वयार्थ — संयम से पतित हुआ साधु इस प्रकार विचार करता है कि (जइऽहं) यदि मैं साधुपना न छोड़ता और (भाविअप्पा) भावितात्मा होकर (जिणदेसिए) जिनेश्वर देवों द्वारा प्ररूपित (सामण्णे परियाए) साधु धर्म का (रमंतो) पालन करता हुआ (बहुस्सुओ) शास्त्रों का अभ्यास करता रहता तो (अज्ज) आज (अहं) मैं (गणी) आचार्य पद पर (हुंतो) सुशोभित होता ॥९॥

देवलोगसमाणो य परियाओ महेसिणं ।
रयाणं अरयाणं च, महानरयसारिसो ॥१०॥

अन्वयार्थ — (महेसिणं) जो महर्षि (रयाणं) संयम में रत रहते हैं, उनके लिए (परियाओ) संयम (देवलोग-समाणो य) देवलोक के सुखों के समान आनन्ददायक है (च) किन्तु (अरयाणं) संयम में रुचि न रखने वालों को (महानरय सारिसो) संयम नरक के समान दुखदायी प्रतीत होता है ॥१०॥

अमरोवम जाणिय सुक्खमुत्तम,
रयाण परियाइ तहाऽरयाणं ।
निरम्रोवम जाणिय दुक्खमुत्तम,
रमिज्ज तम्हा परियाइ पडिए ॥११॥

अन्वयार्थ –(परियाइ) सयम मे (रयाण) रत रहने वाले महापुरुषों के लिए सयम (अमरोवम) देवलोक के (उत्तम) श्रेष्ठ (सुक्खं) सुखो के समान आनन्ददायक होता है (जाणिय) ऐसा जानकर (तहा) तथा (अरयाणं) सयम मे रुचि रखने वालो को यही सयम (निरओवम) नरक के (उत्तम) घोर (दुक्ख) दु खो के समान दुखदायी प्रतीत होता है (तम्हा) ऐसा (जाणिय) जानकर (पडिए) बुद्धिमान् साधु को (परियाइ) सयम मार्ग में ही (रमिज्ज) रमण करना चाहिए ॥११॥

धम्माउ भट्ठ सिरिओ अवेय,
जन्नग्गिविज्झायमिवऽप्पतेयं ।
हीलति ण दुव्विहियं कुसीला,
दाढुद्धियं घोरविस व नागं ।१२॥

अन्वयार्थ - (जन्नग्गि) यज्ञ की अग्नि जब तक जलती रहती है तब तक उसे पवित्र समझ कर अग्निहोत्री ब्राह्मण उसमें घृतादि डालते हैं और प्रणाम करते हैं किन्तु (विज्झाय) जब वह बुझ कर (अप्पतेयं) तेज रहित हो जाती है तब उसकी राख को बाहर फेंक देते हैं तथा (घोर-विसं व) जब तक साँप के मुह में भयकर विष को धारण करने वाली दाढ़ें मौजूद रहती हैं तब तक सब लोग उससे डरते हैं किन्तु (दाढुद्धियं) जब उसकी वे दाढ़ें मदारी द्वारा

निकाल दी जाती तब उससे कोई नही डरता प्रत्युत छोटे-छोटे बच्चे भी (नाग) उस सर्प को छेड़ते हैं और अनेक प्रकार का कष्ट पहुचाते हैं । (इव) इसी प्रकार जब तक साधु सयम का यथावत् पालन करता हुआ तपरूपी तेज से दीप्त रहता है तब तक सब लोग उसकी विनय-भक्ति एव सत्कार-सम्मान करते है किन्तु जब वही साधु (धम्माउ) सयम से (भट्ठ) भ्रष्ट हो जाता है और (सिरिओ) तप-रूपी लक्ष्मी से (अवेय ववेय) रहित होकर (दुव्विहिय) अयोग्य आचरण करने लग जाता है तब (कुसीला) आचार-हीन सामान्य लोग भी (ण) उसको (हीलति) अवहेलना एव तिरस्कार करने लग जाते हैं ॥१२॥

इहेवऽधम्मो अयसो अकित्ती,
दुन्नामधिज्ज च पिहुज्जणम्मि ।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो,
सभिन्नवित्तस्स य हिट्ठओ गई ॥१३॥

अन्वयार्थ – (धम्माउ) सयम धर्म से (चुयस्स) पतित (अहम्मसेविणो) अधर्म का सेवन करने वाला (सभिन्न वित्तस्स) ग्रहण किये हुए व्रतो को खण्डित करने वाला साधु (इहेव) इस लोक मे (अधम्मो) अधर्म (अयसो) अप-यश (य) और (अकित्ती) अकीर्ति को प्राप्त होता है (च) और (पिहुज्जणम्मि) साधारण लोगो मे भी (दुन्नामधिज्ज) बदनामी एव तिरस्कार को प्राप्त होता है तथा (हिट्ठओ गई) परलोक मे नरकादि नीच गतियो में उत्पन्न होकर असह्य दु ख भोगता है ॥१३॥

भु जित्तु भोगाइ पसज्झचेयसा,
तहाविह यट्टु असजम वहु ।

गइं च गच्छे अणभिज्झिय दुहं,
बोही य से नो सुलहा पुणो पुणो ॥१४॥

अन्वयार्थ — (पसज्झचेयसा) तीव्र लालसा एवं गृद्धिभावपूर्वक (भोगाइं) भोगों का (भुंजित्तु) भोगकर (च) तथा (बहुं) बहुत से (तहाविहं असंजमं) असंयमपूर्ण निन्दनीय कार्यों का (कट्टु) आचरण करके जब वह संयम भ्रष्ट साधु कालधर्म को प्राप्त होता है तब (अणभिज्झिय अणहिज्जिय) अनिष्ट (गइं) नरकादि गतियों में (गच्छे) जाकर (दुहं) अनेक दुःख भोगता है (य) और (से) उसे (पुणो पुणो) अनेक भवों में भी (बोही) बोधबीज सम्यक्त्व एवं जिनधर्म की प्राप्ति होना (नो सुलहा) सुलभ नहीं है ॥१४।

इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो,
दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो ।
पलिओवमं झिज्जइ सागरोवमं,
किमंग पुण मज्झ इमं मणोदुहं ।१५।

अन्वयार्थ — संयम में आने वाले आकस्मिक कष्टों से घबरा कर संयम छोड़ने की इच्छा करने वाले साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (नेरइयस्स) नरकों में अनेक बार उत्पन्न होकर (इमस्स जंतुणो) मेरे इस जीव ने (किलेसवत्तिणो) अनेक क्लेश एवं (दुहोवणियस्स) असह्य दुःख सहन किये हैं और (पलिओवमं) वहाँ की पल्योपम और (सागरोवमं) सागरोपम जैसी दुःखपूर्ण लम्बी आयु को भी (झिज्जइ निज्जइ) समाप्त कर वहाँ से निकल आया है (ता पुण) तो फिर (मज्झ) मेरा (इमं) यह (मणोदुहं)

चारित्र विषयक मानसिक दुःख तो (किमग) है ही क्या चीज ? अर्थात् नरकों मे पल्योपम तथा सागरोपम की लम्बी आयुष्य तक निरन्तर मिलने वाला अनन्त दुःख कहाँ और इस सयमी जीवन मे कभी कभी आया हुआ थोडा-सा आकस्मिक दुःख कहाँ ? इन दोनो मे तो महान् अन्तर है। ऐसा सोचकर साधु को समभावपूर्वक वह कष्ट सहन कर लेना चाहिए।

न मे चिर दुक्खमिण भविस्सइ,
असासया भोगपिवास जतुणो।
न चे सरीरेण इमेणऽविस्सइ,
अविस्सई जीवियपज्जवेण मे ॥१६॥

अन्वयार्थ — दुःख से घबरा कर सयम छोडने वाले साधु को ऐसा विचार करना चाहिए कि (मे) मेरा (इण) यह (दुक्ख) दुःख (चिर) बहुत काल तक (न भविस्सइ) नही रहेगा-भोग भोगने की लालसा से सयम छोडने की इच्छा करने वाले साधु को विचार करना चाहिए कि- (जतुणो जीव की (भोग पिवास) भोग पिपासा विषय वासना (असासया) अशाश्वत है (चे) यदि यह विषय-वासना (इमेण) इस (सरीरेण) शरीर मे शक्ति रहते (न अविस्सइ) नष्ट न होगी तो (मे) मेरी वृद्धावस्था आने पर अथवा (जीवियपज्जवेण) मृत्यु आने पर तो (अविस्सई) अवश्य नष्ट हो ही जायगी अर्थात् जब यह शरीर ही अनित्य है तो विषयवासना नित्य किस प्रकार हो सकती है ? ॥१६॥

जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देह न हु धम्मसासण।

त तारिस नो पइलंति इंदिया,
उवितवाया व सुदंसणं गिरिं ॥१७॥

अन्वयार्थ — (एव) उपरोक्त रीति से विचार करने से (जस्स) जिसकी (अप्पा) आत्मा धर्म पर (उ) इतनी (निच्छिओ) दृढ़ (हविज्ज) हो जाती है कि अवसर पड़ने पर वह धर्म पर (देह) अपने शरीर को (चइज्ज) प्रसन्नता पूर्वक न्योछावर कर देता है (हु) किन्तु (न धम्मसासणं) धर्म का त्याग नहीं करता। (व) जिस प्रकार (उवितवाया उवितिवाया) प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु भी (सुदंसण गिरिं) सुमेरु पर्वत को चलित नहीं कर सकती उसी प्रकार (इंदिया) चचल इन्द्रियाँ भी (तारिस) मेरु पर्वत के समान दृढ़ (त) उस पूर्वोक्त मुनि को (ना पइलंति पइंतिंति) संयम मार्ग से विचलित नहीं कर सकतीं ॥१७॥

इच्चेव संपस्सिय बुद्धिम नरो,
आयं उवायं विविहं वियाणिया ।
काएण वाया अदु माणसेणं,
तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिज्जासि ॥१८॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ —(बुद्धिम) बुद्धिमान् (नरो) साधु (इच्चेव) उपरोक्त सब बातों पर (संपस्सिय) भली प्रकार विचार करके तथा (आय) ज्ञानादि लाभ के (उवाय) उपायों को (वियाणिया) जानकर (माणसेणं) मन (वाया) वचन (अदु) और (काएण) काया रूप (तिगुत्तिगुत्तो) तीन गुप्तियों से गुप्त होकर (जिणवयणं) जिनेन्द्र देवों के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए संयम का (महिट्ठिज्जासि) यथा यत् पालन करे। उपरोक्त अठारह स्थानों पर सम्यक् विचार

करने से सयम से विचलित होता हुआ साधु का मन पुन सयम मे स्थिर हो जाता है ॥१८॥ (त्ति वेमि) पूर्ववत् ॥

विविक्तचर्या नामक दूसरी चूलिका

चूलियं तु पवक्खामि, सुयं केवलिभासियं ।
जं सुणित्तु सुपुण्णाण धम्मे उप्पज्जए मई ॥१॥

अन्वयार्थ — (केवलिभासियं) जो सर्वज्ञ प्रभु द्वारा प्ररूपित है (सुयं) श्रुतज्ञान रूप है और (जं) जिसे (सुणित्तु) सुनकर (सुपुण्णाण) पुण्यवान् जीवो की (धम्मे) धर्म मे (मई) श्रद्धा (उप्पज्जए) उत्पन्न होती है ऐसी (चूलियं) चूलिका का (पवक्खामि) मैं वर्णन करता हू ॥१॥

अणुसोयपट्ठिय बहुजणम्मि पडिसोय लद्ध लक्खेण ।
पडिसोयमेव अप्पा दायव्वो होउ कामेण ॥२॥

अन्वयार्थ — जिस प्रकार नदी मे गिरा हुआ काष्ठ प्रवाह के वेग से समुद्र की ओर जाता है उसी प्रकार (बहुजणम्मि) बहुत से मनुष्य (अणुसोय पट्ठिय) विषय प्रवाह के वेग से ससार रूप समुद्र की ओर बहते हैं किन्तु (पडिसोय लद्ध लक्खेण) विषय प्रवाह से छूटकर (होउकामेण) मोक्ष जाने की इच्छा रखने वाले पुरुषो को चाहिए कि वे (अप्पा) अपनी आत्मा को (पडिसोयमेव) सदा विषय प्रवाह से (दायव्वो) दूर रक्खें ॥२॥

अणुसोयसुहो लोओ पडिसोओ आसवो सुविहियाण ।
अणुसोओ ससारो पडिसोओ तस्स उत्तारो ॥३॥

अन्वयार्थ — (ससारो) ससार (अणुसोओ) अनुस्रोत के समान है अर्थात् विषय भोगो की तरफ से जाने वाला है (तस्स) उस ससार से (उत्तारो) पार होना (पडिसोओ) प्रतिस्रोत कहलाता है (सुविहियाणं) साधु पुरुषो का (आसवो) सयम (पडिसोओ) प्रतिस्रोत अर्थात् विषयों से निवृत्ति रूप है इसकी तरफ प्रवृत्ति करना ससारी जीवो के लिए कठिन है क्योकि (लोओ) ससारी जीव तो (अणुसोय सुहो) अनुस्रोत मे ही सुख मानते हैं ॥३॥

तम्हा आयार परक्कमेण, सवर समाहि बहुलेणं ।
चरिया गुणा य नियमा य, हुंति साहूण दट्ठव्वा ॥४॥

अन्वयार्थ - (तम्हा) इसलिए (आयारपरक्कमेणं) साधु को ज्ञानादि आचारो का पालन करने में प्रयत्न करना चाहिए और उसके द्वारा (सवरसमाहि बहुलेण) सवर और समाधि की आराधना करनी चाहिए (य) और (साहूण) साधुओ की (चरिया) जो चर्या (गुणा) गुण (य) और (नियमा) नियम हैं उनका (दट्ठव्वा हुंति) यथासमय पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए ॥४॥

अनिएयवासो समुयाणचरिया,
अन्नायउंछ पइरिक्कया य ।
अप्पोवही कलह विवज्जणा य,
विहारचरिया इसिणं पसत्था ॥५॥

अन्वयार्थ (अनिएयवासो) अनियतवास किसी विशेष कारण के बिना एक ही स्थान पर अधिक न ठहरना (समुयाण चरिया) समुदानचर्या गरीब और श्रीमन्त सभी के घरों से सामुदानिकी भिक्षा ग्रहण करना तथा अनेक घरों से थोड़ा

थोडा आहार लेना (अन्नाय उछ) अज्ञात घरो से भिक्षा ग्रहण करना (पइरिक्कया) स्त्री पशु पडग आदि से रहित एकान्त स्थान मे रहना (य) और (अप्पोवही) उपधि अर्थात् भण्डोपकरण आदि थोडे रखना (य) तथा (कलह विवज्जणा) किसी के साथ कलह न करना (विहारचरिया) यह विहार-चर्या भगवतो ने (इसिण) मुनियो के लिए (पसत्था) प्रशस्त-कल्याणकारी बतलाई है ॥५॥

आइन्न ओमाण विवज्जणा य, ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे ।
ससट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू, तज्जायससट्ठ जई जइज्जा ॥६॥

अन्वयार्थ -- (भिक्खू) गोचरी के लिए जाने वाले (जई) साधु को चाहिए कि (आइन्न ओमाण विवज्जणा) जहाँ जीमनवार हो रहा हो और आने जाने का मार्ग लोगो से खचाखच भरा हो ऐसे भीड-भडक्के वाले स्थान मे तथा जहाँ स्वपक्ष और परपक्ष की ओर से अपमान होना हो ऐसे स्थान मे गोचरी न जावे । (ओसन्न दिट्ठाहडभत्तपाणे) साधु को उपयोगपूर्वक शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए (य) और (तज्जायमसट्ठ) दाता जो आहारादि दे रहा हो उसी से दाता के हाथ और चमचा आदि खरडे हुए हो तो (ससट्ठकप्पेण) उन्ही खरडे हुए हाथ और चमचा आदि से आहार ग्रहण कर (चरिज्ज) सयम यात्रा का निर्वाह करते हुए विचरना चाहिए । (जइज्ज) उपरोक्त कल्याण-कारी विहारचर्या भगवतो ने फरमाई है इसलिए इसके पालन करने मे मुनियो को पूर्ण यत्न करना चाहिए ।६॥

अमज्जमसासि अमच्छरीया, अभिक्खण निव्विगइ गया य ।
अभिक्खण काउस्सग्गकारी, सज्झाय जोगे पयओ हविज्जा ॥७॥

अन्वयार्थ — (अमज्जमंसासि) साधु को मद्य मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का कदापि सेवन न करना चाहिए (अमच्छ-रीया) किसी से ईर्ष्या न करनी चाहिए (अभिक्खणं) सदा (निव्विगइं गया) विषयों का त्याग करना चाहिए (अभि-क्खणं) पुन:-पुन: (काउस्सग्गकारी) कायोत्सर्ग करना चाहिए (य) और (सज्झायजोगे) वाचना, पृच्छनादि स्वाध्याय में (पयओ हविज्जा) सदा लगे रहना चाहिए ॥७॥

न पडिन्नविज्जा सयणासणाइं, सिज्जं निसिज्जं तह भत्तपाणं।
गामे कुले वा नगरे व देसे, ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा ॥८॥

अन्वयार्थ — मासकल्पादि की समाप्ति पर जब साधु विहार करने लगे तब (सयणासणाइं) शयन आसन (सिज्जं) शय्या (निसिज्जं) निषद्या (तह) तथा (भत्तपाणं) आहार पानी आदि किसी भी वस्तु के लिए श्रावकों से (न पडिन्न विज्जा) ऐसी प्रतिज्ञा न करावे कि जब मैं वापिस लौटकर आऊं तब ये पदार्थ मुझे ही देना और किसी को मत देना (गामे) गांव में (वा) अथवा (कुले) कुल में (नगरे) नगर में (व) अथवा (देसे) देश में (कहिं पि) कहीं पर भी साधु को (ममत्तभावं) ममत्व भाव (न कुज्जा) न करना चाहिए यहां तक कि वस्त्र-पात्रादि धर्मोपकरणों पर एवं अपने शरीर पर भी ममत्व भाव न रखना चाहिए ॥८॥

गिहिणो वेयावडियं न कुज्जा, अभिवायणं वंदण पूयणं वा।
असंकिलिट्ठेहि समं वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी ॥९॥

अन्वयार्थ — (मुणी) साधु (गिहिणो) गृहस्थ की (वेयावडियं) वैयावृत्य (वा) अथवा (अभिवायणं वंदण

पूमण) अभिवादन-स्तुति, वन्दन प्रणाम और पूजन-वस्त्रादि द्वारा सत्कार आदि कार्य न करे तथा (असंकिलिट्ठेहिं) सक्लेश रहित उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने वाले साधुओं के (सम) साथ (वसिज्जा) रहे (जओ) जिनके साथ रहने से (चरित्तस्स) सयम की (न हाणी) विराधना न हो ॥९॥

न या लभेज्जा निउण सहाय,
गुणाहियं वा गुणओ सम वा ।
इक्को वि पावाइ विवज्जयंतो,
विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥

अन्वयार्थ—(या) यदि कदाचित् कालदोष से (निउण) सयम पालन करने में निपुण (गुणाहियं) अपने से अधिक गुणवान् (वा) अथवा (गुणओ सम वा) अपने समान गुणों वाला (सहाय) कोई साथी साधु (न लभेज्जा) न मिले तो (पावाइ) पाप कर्मों को (विवज्जयंतो) वर्जता हुआ (कामेसु) कामभोगों मे (असज्जमाणो) आसक्त न होता हुआ पूर्ण सावधानी के साथ (इक्को वि) अकेला विचरे किन्तु शिथिलाचारी एव पासत्थों के साथ न विचरे ॥१०॥

सवच्छर वावि पर पमाण,
बीयं च वास न तहिं वसिज्जा ।
सुत्तस्स मग्गेण चरिज्ज भिक्खू
सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ ॥११॥

अन्वयार्थ – (संवच्छर) वर्षाकाल मे चार मास (च) और (वावि) बाकी समय मे एक मास रहने का (पर) उत्कृष्ट (पमाण) परिमाण है-इसलिए जहाँ पर चातुर्मास किया हो अथवा मासकल्प किया हो (तहिं) वहाँ

पर (बीयं) दूसरा (वासं) चातुर्मास अथवा मासकल्प (न वसिज्जा) न करना चाहिए क्योंकि (सुत्तस्स अत्थो) सूत्र एवं उसका अर्थ (जह) जिस प्रकार (आणवेइ) आज्ञा दे उसी प्रकार (सुत्तस्स) सूत्रोक्त (मग्गेण) मार्ग से (भिक्खू) मुनि को (चरिज्ज) प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

भावार्थ — वर्षा ऋतु में जैन साधुओं को एक स्थान पर चार महीने और अन्य ऋतुओं में अधिक से अधिक एक महीने तक ठहरने की शास्त्र की आज्ञा है। जिस स्थान पर एक बार चातुर्मास किया हो दो चातुर्मास दूसरी जगह करने के बाद ही फिर उस स्थान पर चातुर्मास कर सकता है। इसी प्रकार जहाँ मासकल्प किया हो, उसी जगह फिर मासकल्प करना दो महीने के बाद ही कल्पता है।

जो पुव्वरत्तावरत्तकाले,
संपेहए अप्पगमप्पएणं ।
किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं
किं सक्कणिज्जं न समायरामि ॥१२॥

अन्वयार्थ — (जो) साधु को (पुव्वरत्तावरत्तकाले) रात्रि के प्रथम पहर और पिछले पहर में (अप्पगं) अपनी आत्मा को (अप्पएण अप्पगेणं) अपनी आत्मा द्वारा (संपेहए संपिक्खए) सम्यक् प्रकार से देखना चाहिए अर्थात् आत्म-चिन्तन करते हुए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) मैंने (किं) क्या क्या (किच्च) करने योग्य कार्य (कडं) किये हैं (च) और (किं) कौन कौन से तपश्चरणादि कार्य करना (मे) मेरे लिए (सेसं) अभी बाकी है और (किं) वे कौन कौन से कार्य हैं (सक्कणिज्जं) जिनको करने

की मेरे मे शक्ति तो है किन्तु (न समायरामि) प्रमादादि के कारण मैं उनका आचरण नही कर रहा हूं ॥१२॥

कि मे परो पासइ किं च अप्पा,
किं वाऽहं खलियं न विवज्जयामि ।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो,
अणागयं नो पडिबंध कुज्जा ॥१३॥

अन्वयार्थ.— साधु को इस प्रकार विचार करना चाहिए कि (मे) जब मैं सयम सम्बन्धी कोई भूल कर बैठता हू तो (परो) दूसरे लोग-स्वपक्ष परपक्ष, वाले सभी लोग मुझे (किं) किस घृणा की दृष्टि से (पासइ) देखते हैं (च) और (अप्पा) मेरी खुद की आत्मा (किं) क्या कहती है (वा) और (अहं) मैं (किं) अपनी किन-किन (खलियं) भूलों को (न विवज्जयामि) अभी तक नहीं छोड सका हू और क्यो नही छोड सका हू ? अब मुझे इन सब भूलो को छोडकर सयम मे सावधान रहना चाहिए (इच्चेव) जो साधु इस प्रकार (सम्मं) अच्छी तरह (अणुपासमाणो) विचार एव चिंतन करता है वह (अणागयं) भविष्य में (नो पडिबंध कुज्जा) दोषो से छुटकारा पा जाता है अर्थात् फिर वह किसी प्रकार का दोष नही लगा सकता ॥१३॥

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,
काएण वाया अदु माणसेणं ।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा,
आइन्नओ खिप्पमिव क्खलीणं ॥१४॥

अन्वयार्थ — (इव) जिस प्रकार (आइन्नओ) जाति-वान् घोडा (क्खलीणं) लगाम का सकेत पाते ही विपरीत

मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चलने लग जाता है उसी प्रकार (धीरो) बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि (जत्थेव) जब कभी (कह) किसी भी स्थान पर (पासेज्ज कायेण वाया अदु माणसेण) अपने मन, वचन और काया को (दुप्पउत्तं) पाप कार्य की तरफ प्रवृत्त होते हुए (पासे) देखे तो (तत्थ) तत्काल (तत्थेव) उसी समय (पडिसाहरिज्जा) उसको उस पाप कार्य से खींच कर सन्मार्ग में लगा दे ॥१४॥

जस्सेरिसा जोग जिइंदियस्स, धिईमओ सप्पुरिसस्स निच्चं।
तमाहु लोए पडिबुद्धजीवी सो जीवई संजमजीविएणं ॥१५॥

अन्वयार्थ — (जिइंदियस्स) जिसने पाँचों इन्द्रियों को जीत लिया है (धिईमओ) जिसके हृदय में संयम के प्रति पूर्ण धैर्य है (जस्स) जिस (सप्पुरिसस्स) सत्पुरुष ने (जोग) मन, वचन, काया रूप तीनों योगों को (एरिसा) अच्छी तरह वश में कर लिया है (तं) ऐसे महापुरुष को (लोए) लोक में (पडिबुद्ध जीवी) प्रतिबुद्धजीवी संयम में सदा जागृत रहने वाला (आहु) कहते हैं क्योंकि (सो) वह (निच्चं) सदा (संजम जीविएणं) संयम जीवन से ही (जीवई) जीता है ॥१५॥

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो,
सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ,
सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ ॥१६॥ त्ति बेमि ॥

अन्वयार्थ — (सव्विंदिएहिं) सब इन्द्रियों को वश में रखने वाले (सुसमाहिएहिं) सुसमाधिवंत मुनियों को (सययं) सदा (अप्पा) अपनी आत्मा की (खलु) सब प्रकार से

(रक्खियव्वो) रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उसे तप, सयम मे लगाकर पाप कार्यो से उसे बचाना चाहिए क्योकि (अरक्खियो) जो आत्मा सुरक्षित नही है वह (जाइपह) जाति पथ को (उवेइ) प्राप्त होती है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र मे फसकर ससार मे परिभ्रमण करती रहती है और (सुरक्खियो) सुरक्षित अर्थात् पाप कार्यों से निवृत्त आत्मा (सव्वदुहाण) सब दु खो का अन्त करके (मुच्चइ) मोक्ष को प्राप्त हो जाती है ॥१६॥ (त्ति बेमि) पूर्ववत् ।

॥ इति चूलिका सहित श्री दशवैकालिक सूत्र का अन्वय सहित शब्दार्थ समाप्त ॥